प्रस्तावना.

पाठक महाशय यह 'धर्मरत्नोद्योत' ग्रंथ आपके स्वाध्यायार्थ आपके निकट उपस्थित किया है, सो यह ग्रंथ आरानिवासी स्वर्गीय बाबू जगमोहनदासजीने बनाया है । बाबूसाहबका स्वर्गवास विक्रमसंवत् १९...में हुवा है । यद्यपि इनका सविस्तर चरित्र इस ग्रंथके साथ प्रकाशित करना उचित था, परंतु हमारे पास चरित्र लिखनेका कोई साधन न होनेके कारण हम यह इच्छा पूरण नहीं करसके । आप कैसे धर्मात्मा मर्मज्ञ थे सो अनेक सुचतुर पाठक महाशय इस ग्रंथकी आद्योपान्त स्वाध्याय करनेसे जान जांयगे ।

यद्यपि इस ग्रंथकी कविता विद्वज्जनमनोरंजनी नहीं है क्योंकि संशोधनकरनेपर भी अनेक जगह अनिवार्य छंदोभंगादिदोष रहगये हैं । तथापि अनेक जगह अति उत्तम सरल स्वाभाविक मनोरंजनी कविता भी है । ऐसी सरल कविताके द्वारा विविध प्रकारके विषयोंका वर्णन अल्पज्ञजनोंकेलिये अति उपयोगी है, ऐसा समझकर ही हमने इस ग्रंथको प्रकाशित किया है । आशा है कि इससे सर्वसाधारण भाई विशेषप्रकारसे लाभ उठावैंगे.

इसग्रंथकी हमको एकही प्रति आरासे प्राप्त हुई थी इसकारण अनेक जगहँ संदेहयुक्त अशुद्धियां रहगई हैं । सो पाठक महाशय इस त्रुटिको क्षमा करैंगे ।

११-३-१२

प्रकाशक ।

श्रीपरमात्मने नमः ।

स्याद्वादजैनग्रंथमाला-

२.

धर्मरत्नोद्योत ।

(पूर्वार्द्ध)

दोहा ।

मंगल लोकोत्तम नमौं, श्रीजिन सिद्ध महंत ।
साधु केवली कथित वर, धर्म शरन जयवंत ॥ १ ॥
देव धरम गुरु वंदिकें, जिनशासन अनुसार ।
धर्मरत्नउद्योतमें, करौं मंगलाचार ॥ २ ॥

कवित्त ।

गहि उपासना परम प्रमाण, प्र,-मेय भेदज्ञान विस्तार ।
लहि उपदेश क्रिया विधान बहु, द्वादश अनुप्रेक्षा सुविचार ॥
है सु समाधिभावना उत्तम, आराधे आराधनसार ।
धर्मरत्न उद्योतमाहि भवि, पढिये नित प्रति नव अधिकार ॥

१ इस ग्रंथमें उपासना १, प्रमाण २, प्रमेय ३, भेदविज्ञान ४,

उपासनाधिकार।

दोहा।

वंदौं श्रीजिनराज पद, निरावरण अविकार।
कहौं सुजँस सत्यार्थ उर, दिढ उपासना धार॥ १॥
इह भव परभव सुख मिलै, मिलै मोक्षसुख सार।
श्रीजिनेंद्रपद भक्तितैं, है सुख सर्वप्रकार॥ २॥

पंचकल्याणकपाठ ।

कवित्त।

प्रभुजी तुमरे पनमंगलमै सब ही जगजीवनने सुख पाई।
गर्भागममैं छहमास सु नौ नित रत्नकी वरषा बहु आई॥
तुम जन्मपुरीके लोग सबै सु निहाल भए बहुते निधिपाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥३॥
जिनजन्मसमयमहिं सुख त्रिलोकमैं बहुप्रकार अतिशय प्रगटाई।
कंपे सु सुरासन मौलि नये तब औधथकी जिनजन्म लखाई॥
हिय भक्ति सु आन नमे धरिध्यान चले हित ठान सुरासुरराई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥४॥
जिनके जन्मोत्सवमाहि सु जोजन लच्छतने अयरावत आई।
सुरराज जहाँ गजराज चढे जिनराज लिए गिरराज सुजाई॥
द्युतिछत्र दिपै रविज्योति छिपै बहु उज्जल चामरकी झरलाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥५॥

उद्यमोपदेश ५, सुव्रतक्रिया ६, द्वादशानुप्रेक्षा ७, समाधिभावना ८, आराधना ९, ये नव अधिकार हैं। २ भगवानके गुण।

गजके सब सुंदर सौ मुख हैं तहँ दंत सु आठहि आठ बताई
वसुसयं सब दंतनिपै सु सरोवर है जलपूरित सुंदरताई ॥
सर ही सर फूल रही सुकमलनी संख्या सौऽरु पचीस सुहाई ।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥६॥
कमलनि प्रति कमल पचीस लहैं अति सुंदररूप रहे प्रफुलाई।
है कमल कमलदलें अष्टोत्तरसत कौमलपत्रनिकी छवि छाई ॥
सब कोटि सताइस दलदल ऊपर रचे अपछरा नचे सु आई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥७॥
प्रभु आप सुमेरसिंहासनपै सु कियौ असनौंन महान बडाई ।
सुविधान करावनहार सुरेशें जहाँ जल छीरसमुद्रसौं आई ॥
इन आदिक जन्मकल्यानककी महिमा सु घनी हमतैं न कहाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥८॥

जन्मके दश अतिशय ।

मलमूत्र विकार नहीं प्रभुके सु पसेव लगार नहीं कहुँ पाई ।
है स्वेतस्वरूप सु शोणित देह महाद्युतिरूप धरैं सुचिताई ॥
जिनके सँस्थान जु आदिं विराजत उत्तम सँहननकी प्रभुताई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥९॥
सब सौरभतैं उतकृष्ट महा प्रभुके तनकी है सौरभताई ।
शुभ एकहजार रु आठ सु लच्छन हैं प्रभुके तनमैं सुखदाई ॥

१ आठसौ । २ कमलोंकी पँखुरी वा पत्ते । ३ अभिषेक । ४ इंद्र ।
५ समचतुरस्रसंस्थान–पहिला ।

जिनरूप निहार नहीं तृपत्यौ तव नेत्र हजार कियौ सुरराई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥१०
बल अनंत तनमाहिं सही तिहुं लोकहुतें अधिकी प्रभुताई।
जिनके वचनामृत मिष्ट महा मर्यादिकरूप सु इष्ट सुहाई॥
प्रभुके सब संपति राजविभौ निःपाप सु अदभुत पुण्यप्रभाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥११

तपकल्यानक।

कछु कारन पाय विराग भये तव श्रीजिन द्वादश भावना भाई।
जगरीत अनित्य न सरन कहूँ संसार महादुखरूप अनाई॥
हूं चेतन एक अकेलोइ आपु सु और विभौ सव न्यारोइ भाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥१२
यह देह अपावन असुचि विचार सु आस्रव है जियको दुखदाई।
है संवररीत महासुखमूल सु निर्जरते वहु कर्म खिपाई।
यह लोक नराकृत है जु अनादि सु दुर्लभ वोधि रु धर्म उपाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥१३
प्रभुके सुविराग विचारत ही लौकांतिक देव प्रभू ढिंग आई।
थुति कीन प्रवीन सु देवरिषी वहु भाँतिनतैं वैराग वढाई॥
प्रभु आप परिग्रह त्याग निर्ग्रंथ भये सु निजातम ध्यान लगाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥१४
चौघातिया घात किये जव ही तव केवलज्ञान प्रकाश कराई।
प्रगट्यौ अतिशय तहँ वहुप्रकार उच्छाह कियौ सुर चतुरनिकाई॥

प्रभुके नहिं राग तथापि सुरेस रच्यो समवश्रत भक्ति उपाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥१५
जहँ नीलरतनमय शिलाभूमि अति उत्तम गोलाकार सुहाई।
शुभ कोट च्यार पनवेदि भूमित्रसु है अदभुत सुविभो तिहँ ठाँई॥
श्रीमंडपगंधकुटी सिंहासन कमलासनपै श्रीजिनराई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥१६
जहँ भवनालय चालीस इंद्र अरु व्यंतर इंद्र बतीसौं आई।
सूर सोम चौवीस कल्पपति चक्रवर्त्ति नरसिंह सुहाई॥
सत इंद्र नमैं प्रभुके दरवार सु भक्तिभार कर सीस नमाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥१७
तिहुं खंड छखंडनिके नरनायककी जहँ फौज घटा उमगाई।
कहुँ इंद्र फनेंद्र सुरेंद्रनिके सँग सेना सातप्रकारकी आई॥
अति भीर गँभीर भयो सु तथापि न रंचहु होत तहाँ सँकराई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥१८

केवलज्ञानके दशअतिशय।

उपसर्ग अभाव सबै अनुकूल पशू नर देव नमे सब आई।
सु चहूंदिस सनमुख दर्शन है प्रभुदेहतनी न परै परछांहीं॥
आकाशविहार करैं प्रभुजी पदकंज जहाँ निरधार रहाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥१९
नहिं नेत्रनि टिमकार लगै नख केश रहै समभाव बताई।
नहि कवलाहार विकार कहूं वर ज्ञानानंद सदा त्रिपताई॥

सब विद्या ईश मुनीश प्रभू जिन है सबही गुरुके गुरुराई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई ॥२०

नहिं है अदया कहुं प्रानितनी वध बंधनका जहँ नाम न पाई।
है जोजन सौ सु सुभिच्छ चहूंदिस ईति रु भीति नहीं कहुं आई॥
इत्यादि घनी अतिशय स्वयमेव घनी प्रभुकी सुर भक्ति कराई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥२१

देवकृत चतुर्दश अतिशय।

जिनकी धुनि उत्तम अर्द्ध मागधी भाषारूप सु देव कराई।
सब जीवनिकौं आनंद जहाँ सुर जयजयकार सु शब्द कहाई॥
सब धान्य जु एकहि बार फलै सु छहों रितुके फल फूल फुलाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥२२

जिनराज जहाँ पग आप धरै अतिशीघ्र तहाँ सुरकी चतुराई।
तहँ पंद्रह पंद्रह पद्मतने सुर पंद्रह पंकति पद्मरचाई॥
दो सतक पचीस सुवर्णपद्म प्रभुपादपद्मतलमैं छवि छाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई॥२३

आकाश दशोंदिशि है अमलीन महीन सुवासित बूंद झराई।
निःकंटकभूमि सुदर्पन जिम जहँ मंगलद्रव्यनकी छवि छाई॥
जहँ आह्वानन सुर शब्द कहैं बहु ज्यौं सु प्रमोद हिये न समाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई ॥२४

इकलार गयेंद्र मृगेंद्र सबहि निर्वैर धरे जहँ धर्मदुहाई।
बहु जनमनिके सब संचित वैर विरोध मिटै प्रगटै मित्राई॥

वृषचक्र चलै धुजपँक्ति हिलै सु सुगंधित पौननुकूल वहाई ।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई ॥२५

अष्ट प्रातिहार्य ।

नहिं शोक रहै कोउ प्रानिनकौं यह वृक्ष अशोकतनी सु वडाई।
जहँ इष्ट सुगंध सुवर्णमयी सुर फूलनिकी वरषा वरषाई ॥
घनघोर सु द्वादश सार्द्ध करोर जु दुंदुभि वाजन देव वजाई ।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई ॥२६
जहँ पंकतिवंत दुहूंदिसितैं सुर चौसठ चामरकी झर लाई ।
द्युति दिव्य प्रभामंडल प्रमोद भवि सात सु भव अपने दरसाई।
प्रभुदेहतनी श्रीदिव्यधुनी जगजीवनिकौं शिवराह वताई ।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई ॥२७
है हेमसिंहासनपै प्रभुजी सु तथापि तहां अँतरीक्ष प्रभाई ।
शिवमारग तीन सुरत्न इकत्र कहे फिरफिर तिहुंछत्र वडाई ॥
तिहूं लोककि है सु विभौ तुमरे प्रभु तद्यपि आप निर्ग्रंथ कहाई।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई ॥२८
वर ज्ञान सुदर्शन वीर्य अनंत धरें सुख श्रीजिनराज सदाई ।
नहिं दोष अठारह है सु जहाँ गुण छ्यालिस आदि अनंत तहाँई।
प्रभु आप विराग स्वभाव तथापि कृपानिधि हौ हितशिक्षादाई ।
है मंगलकार नमौं सुखसार सु पंचकल्यानक श्रीजिनराई ॥२९

विहारवरनन ।

जव इंद्र लख्यौ निज औधथकी प्रभुके जु विहार समय अव आई।
तव ही प्रभुके ढिग जाय रहे सु वनाय कहें निज सीस नवाई॥

बहु आरज देशनिके भविजीव सुकारज हेत रहे लवलाई ।
है मंगलकार महासुखसार विहारसमय प्रनमौं जिनराई॥२०॥
दुठ मोह महातप तापनितैं तप्ताय रहे भविजीव अनाई ।
तिनको तुमरी धुनि शीतल चैन करै सुख पूर हरै तप्ताई ॥
वर धर्म सुतीरथके तुम नायक कीजे कृपा जिनधर्म बताई ।
है मंगलकार महासुखसार विहारसमय प्रणमौं जिनराई ॥२१
प्रभु आरजदेश विहार करैं तिहँ औसरकी छवि को कवि गाई।
तब औरहि रीत पुनीतमयी सुविभूति नयी रचना प्रगटाई॥
जहँ नवनिधिलार भँडार भरे सब भूप खरे प्रभुके गुणगाई ।
है मंगलकार महासुखसार विहारसमय प्रनमौं जिनराई॥२२॥
कहुं निर्तत आय सुरी अमरी कहुं गान करैं सुरतान उठाई।
कहुं शंख धुनी कहुं लोक गुनी कहुं हैं सु मुनी कहुं आर्या माई॥
कहुँ घंट रटै कहुँ दान बटै कहुं नाट नटै अमरी उमगाई ।
है मंगलकार महासुखसार विहारसमय प्रणमौ जिनराई ॥२३
कोउ ज्ञान गुनै कोउ कर्म धुनै कोउ धर्म सुनै कोउ मंगल गाई ।
कोउ काव्य रचै कोउ देव नचै कोउ भक्ति मचै शिवमारग पाई॥
कोउ जाप जपै कोउ ताप तपै कोउ पाप खपै निज ध्यान लगाई ।
है मंगलकार महासुखसार विहार समय प्रणमौं जिनराई ॥ २४ ॥
जहँ कूपनके जल छार अपार सुस्वादित होय लटै परजाई ।
जहँ मूक पुकार सुनै वधिरा रु दरिद्र महानिधि संपति पाई ॥
जहँ अंध लखै अरु पंगु चलै समवश्रतकी अतिशय अधिकाई।
है मंगलकार नमौ सुखसार सुपंचकल्यानक श्रीजिनराई ॥२५॥

इन आदि घनी महिमा प्रभुकी कहते कोउ पंडित पार न पाई।
वहु भव्यनिकौं सिवपंथ दिखाय सु आप प्रभू शिवधाम सिधाई॥
जस गाय सुपंचकल्यानकका प्रभुके सरने 'जगमोहन' आई।
है मंगलकार प्रभूदरवार नमौं नित पंचकल्यानक गाई ॥३६॥

इति पंचकल्यानकपाठ ।

दोहा ।

अरिरजविघ्न निवारिकैं, निरावरण अविकार ।
वंदौं श्रीजिनराजपद, होय सु मम उपकार ॥ १ ॥
सांचो चिंतामन तुही, सुरतरु चित्रा वेलि ।
कामधेनु पारस नमौं, तुव पद कमला केलि ॥ २ ॥

समवसरन दरवारमैं, देखी अजव वहार ।
हिरनीका वालकलिये, सिंहनी करै दुलार ॥ ३ ॥
समवसरन दरवारमैं, मिटै विरोध विकार ।
गौ नाहर इकसंग रह, मूपक अरु मंजार ॥ ४ ॥

गूंगा गावै तान जहँ, वहिरा सुनै पुरान ।
अंधा पावै आँख दो, दरसै श्रीभगवान ॥ ५ ॥
पंगु चढै समवस्सरन, रसना कह जिननाम ।
नेत्र लखै प्रभुपद कमल, मन अलि ले विश्राम ॥ ६ ॥

उमगे आठौं अंग मम, परसन हित प्रभुपाय ।
नैना वडे उतावले, मिलें अगाऊ जाय ॥ ७ ॥

अष्ट प्रातिहार्य ।

तरु अशोक जिनधाममैं, धरै सु आनँद कंद ।
जाप्रसाद भविका मिटै, शोक थोक दुख दंद ॥ ८ ॥
परम सुगंध सुवर्णमय, दिपैं विचित्र वहार ।
श्रीजिनेंद्र दरवारमैं, वरसै फूल अपार ॥ ९ ॥
तिहुं जगको फिरचो गयो, भयो त्रिजगको राज ।
तीन छत्र फिरफिर कहैं, धन्न धन्न जिनराज ॥ १० ॥
प्रभु पूर्वे आराधियो, रतनत्रय सु पवित्र ।
सो छत्रत्रय मिस किधौं, छाया धरें विचित्र ॥ ११ ॥
कहैं सो उज्जल भावतैं, फिर फिर तीनौ छत्र ।
इहां प्रतच्छ सु मोक्षमग, तीनौ रतन इकत्र ॥ १२ ॥
एक सिंघासन राजको, त्याग्यौ श्रीजिनराज ।
तीनसिंघासन सुररच्यो, (?) त्रिभुवन राज समाज ॥ १३ ॥
उज्जल चौसठि चमर शुचि, गंगतरँग उनहार ।
श्रीजिनेंद्र दरवारमैं, अमर चमर वरदार ॥ १४ ॥
चमर वृंद चंचल चपल, उज्जल भाव सुधार ।
प्रभुजस अचल विचारके, नमै सु वारंवार ॥ १५ ॥
जिनतनकी ज्यौं दिव्यधनि, करहि सभा उपकार ।
परमातम अरहंतकी, महिमा अगम अपार ॥ १६ ॥
परमज्योति उद्योतद्युति, भामंडल विस्तार ।
चंद्रभानकी छवि हरै, धरै सु शोभा सार ॥ १७ ॥

१ अच्छे । २ रंगके ।

वजैं देवदुंदुभि जहाँ, द्वादश सार्द्ध करोर ।
जोर शोरसौं यौं कहैं, सुनहु धर्म चहुं ओर ॥ १८ ॥

श्रीजिन मंदिरद्वारपै, सोहै वंदनमाल ।
मुक्तामाल विशालवर, कनकमाल मनिमाल ॥ १९ ॥

श्रीजिनमंदिर द्वारपै, है सु सदाव्रत सार ।
जो चाहै सो दान ले, सकल सत्त्व उपकार ॥ २० ॥

श्रीजिनमंदिर द्वारपै, वरसै कंचन मेह ।
इंद्रपुजारी यौं कहै, लूटहु निस्संदेह ॥ २१ ॥

श्रीजिनमंदिर द्वारपै, विविध धुजाकी पंक्त ।
मनहु नृत्यकरि कहि सुजस, भाव वतावत व्यक्त ॥ २२ ॥

धर्मचक्र जिनराजका, धर्मज्योति विसतार ।
वहु अधर्म परिहारकर, आरा दिपै हजार ॥ २३ ॥

सो है श्रीजिनधाममैं, मानस्तंभ उतंग ।
जाके दर्शनतैं तजै, मानी मानतरंग ॥ २४ ॥

श्रीजिनमंदिर भूमिमैं, जे नारी रुचि धार ।
पूरै चंदन चौक जो, तिनके भाग्य उदार ॥ २५ ॥

पुष्पवृष्टि ऊरध थकी, अधो धूपघट धूम ।
सौरभ सव इकठी भई, श्रीजिनमंदिर भूमि ॥ २६ ॥

कहुँ चंदन घनसार कहुँ, कुसुम सुमाल प्रवंध ।
है सु धूपघट जिनभवन, महा सुगंध सुगंध ॥ २७ ॥

पंचाश्चर्य ।

रतनफूल बरसै सुरनि, वायु मंदगति सार ।
जय जय जय दुंदुभि बजै, श्रीजिनेंद्र दरबार ॥ २८ ॥

छत्र चमर दर्पन कलश, श्रीस्वस्तिक भृंगार ।
पंखा धुजा सुहावनौ, मंगल प्रभुदरबार ॥ २९ ॥

कमला वसि जिनचरनपै, प्रगट बतावति भाव ।
जे जिनपद मस्तक धरैं, मेरो, तहां बसाव ॥ ३० ॥

बहु धन खरचि उछाहसौं, पूजै श्रीजिनराज ।
इह भव जस परभव सुखी, 'एक पंथ द्वै काज' ॥३१॥

जो कहुं तीरथ गमनमैं, मिलैं महा मुनिराज ।
देव दर्श गुरु परस यौं, 'एक पंथ द्वै काज' ॥ ३२ ॥

द्रव्य चढावत पुण्यतरु, बोवत बीज सुखेत ।
त्याग ममत्व सु बीजका, फलते हैं ज्यों हेत ॥ ३३ ॥

उत्तम द्रव्य सु देवढिग, धरहिं भेट आल्हाद ।
करैं त्याग निज शक्ति सम, भक्ति सुमार्ग अनाद ॥३४॥

सुरगमाहि सुरपति करैं, नितप्रति जिन अभिषेक ।
श्रीजिनवर पूजन तने, पुण्य महातम अनेक ॥ ३५ ॥

उचित काजके प्रथम जो, पूजैं रिखब जिनंद ।
ताहि सुमंगल यौं बढै, ज्यों दुतियाको चंद ॥ ३६ ॥

---

१ रहना ।

निःकलंक निःशंक है, चंद्र नाथ जिनराय ।
सेवै सकुटुँव चंद्रमा, नख मिस प्रभुके पाय ॥ ३७ ॥
वल नारायन मुकुटकी, मनि छवि अद्भुत होत ।
नेमिचंद्रके चरननख, मिली ज्योतिमें जोत ॥ ३८ ॥
नेमिचंद्रके चरननख, नमै कल्पपति आय ।
मुकुटशिखाके मणिनकी, किरनकला अधिकाय ॥ ३९ ॥
मौर मुकुटमणि जड़ितकी, चटकि लटकि नहिं पेम ।
झटकि पटकि गिरवर चढे, राजमती वर नेम ॥ ४० ॥
पारस प्रभुके चरनपै, जो कदाचि लगि जाय ।
मनलोहा संसारका, सब सुवर्ण हो जाय ॥ ४१ ॥

पांच वालब्रह्मचारी जिन ।

वासुपूज्य प्रभु मल्लि जिन, पारस नेम कुमार ।
महावीर त्यागी नमौ, पंच वाल ब्रमचार ॥ ४२ ॥

त्रेसठ शलाकापुरुष ।

नव प्रतिहर नव है हरी, नव वलदेव सुजान ।
चक्री द्वादश दुगुन जिन, त्रेसठ पद परधान ॥ ४३ ॥

तीन चक्रवर्तितीर्थंकर ।

नौ निधि चौदह रतन वर, है छह खंड सुदेश ।
शांति कुंथु अरनाथके, सोहै पद चक्रेश ॥ ४४ ॥
महाराज सब त्यागिकें, कियौ सु आतमकाज ।
प्रगट्यो केवलपद विभौ, त्रिभुवनराज समाज ॥ ४५ ॥

आपुहि हो कुलदेवप्रभु, आपुहि विद्यादेव ।
इष्टदेव हौ आपु ही, आपुहि हौ जिनदेव ॥ ४६ ॥
ब्राह्मन छत्री वैश्य जहँ, हैं उत्तम कुल भेव ।
तहाँ सनातन धर्मतैं, श्रीजिनेंद्र कुलदेव ॥ ४७ ॥
अष्टादश दूषन रहित, भूषन सुगुन अनंत ।
पूजनीक शत इंद्रतैं, परमपूज्य अरहंत ॥ ४८ ॥
प्रभुपदपै मस्तक धरें, झरैं मोहनी धूर ।
घसत ललाट कुकरमकी, मेटत रेखा कूर ॥ ४९ ॥
सुर नर पशु कृत होय नहिं, नहीं होय स्वयमेव ।
चतु उपसर्गनितैं बचै, जो पूजै जिनदेव ॥ ५० ॥
बचै चतुर उपसर्गतैं, रचै सुधर्म सपष्ट ।
मचै मोच्छमगमैं सुधी, बहुरि न देखै कष्ट ॥ ५१ ॥
जिनकी भक्ति प्रसादतैं, कटैं कुकर्म अनाद ।
कौन अचंभा आज जो, मेटै विघन विषाद ॥ ५२ ॥
श्रीजिनभक्ति प्रसादतैं, विविध विघन है दूर ।
होय सुहित नित भक्तिघट, शांति पौष्टि परिपूर ॥५३॥
धरइ भक्ति प्रभुचरनकी, करइ सुथुति उच्चार ।
हरइ आपदा दुख टरइ, भरइ पुण्य भंडार ॥ ५४ ॥
विना राग प्रभु भक्तको, दियौ परम सुख पूर ।
दोष भाव विन कर्मकौं, कियौ सहज चकचूर ॥ ५५ ॥
करुणाभाव सु मोह ज्यौं, मोहप्रकृति करि दूर ।
परहित उपकारी प्रभू, यह आश्चर्य सु भूर ॥ ५६ ॥

वीतरागदेवकी भक्तिसे सुख ।

श्रीजिनवर पद भक्तितैं, अंतराय अनुभाग ।
सूकि जाय सहजें लहै, वांछितार्थ वडभाग ॥ ५७ ॥
श्रीजिनवर पद भक्तितैं, ह्वै विशुद्ध परिणाम ।
तातैं पाप कटै प्रगट, पुण्यास्रव अभिराम ॥ ५८ ॥
श्रीजिनवरपद भक्तितैं, सातावेदनि आद ।
पुण्यप्रकृति अनुभाग वहु, वधै सु सुख आह्लाद ॥ ५९ ॥
प्रचुर स्थिति अनुभाग युत, है जहँ पुण्यनिकेत ।
तहँ सब सामग्री सहज, मिलै सु निज सुखहेत ॥ ६० ॥
श्रीजिनवर पद भक्तितैं, पापप्रकृतिके माहिं ।
थिति अनुभाग घटै सहज, कष्ट रहै कछु नाहिं ॥ ६१ ॥
प्रकृति असाता पलटिकै, होय सुसाता रूप ।
श्रीजिनेंद्र पद भक्तितैं, सहज सुखी चिद्रूप ॥ ६२ ॥

नवदेवतानमस्कार ।

वंदौं पांचौ परम पद, चैत्य—चैत्यगृह सार ।
जैनधरम वच उरधरौं, दिढ उपासना धार ॥ ६३ ॥

चौपाई ।

प्रथम नमौं पद श्रीअरहंत । समवशरनपति त्रिजग महंत ॥
प्रणमौ सहज सिद्ध जयवंत । वसुगुण आदिक सुगुण अनंत ॥ ६४ ॥
प्रणमौ श्री आचार्य उदार । लहौं सुदीक्षा शिक्षासार ॥
प्रणमौ उपाध्याय गुरुदेव । मिलै सुशास्त्रज्ञान वहु भेव ॥ ६५ ॥

प्रणमौं सरवसाधु निरग्रंथ । सहजरूप दरसै शिवपंथ ॥
पंचपदस्थ प्रशस्त समस्त । वंदन करौं जोर जुगहस्त ॥ ६६ ॥
पांचौं कल्यानक हित ठान । नमौ चतुरविंशति भगवान ॥
सीमंधर आदिक जिनवीस । नमौं सु नित हित कर धर सीस ६७
प्रमत्तादि अयोग प्रजंत । ध्यावौं गुणस्थान जयवंत ॥
तीन ऊन नवकोटि मुनीस । वंदौं भक्ति भार नमि सीस ॥६८॥
जंबू स्वामि नमौ धरि ध्यान । अंतकेवली कहे पुरान ॥
नमौं सु भद्रवाहु भगवंत । अंतिमश्रुतकेवली महंत ॥ ६९ ॥
श्रीगुरु वैद्य मिले सुख पोप । जनम जरा मृतु मिटै त्रिदोष ॥
परमदेव गुरु भक्ति प्रसाद । प्रगटै सुख दुख मिटै अनाद ॥७०
श्रीसम्मेद शिखर सु महान । तुंगीगिर गिरनार सु थान ॥
इन आदिक जे तीरथधाम । भावसहित नित करौं प्रनाम ७१
श्रीजिनजनमोत्सव धरि ध्यान । प्रणमौं पांचौं मेरु महान ॥
जहाँ घने चारनमुनिराज । केवल लै शिवपावै आज ॥ ७२ ॥
नमौ विदेह क्षेत्र सुख रले । जहँ सदीव शिवमारग चलै ॥
समवशरन लछमी विस्तार । तहँकी महिमा अगम अपार ७४
कृत्रिम अकृत्रिम सुखकार । वंदौं श्रीजिनविंव उदार ॥
जिनके दर्शनतैं हित सधै । ज्ञान विरागभाव निज वधै ॥७५॥

दोहा ।

दरसै जिनके दरसतैं, शिवमग मूरतवंत ।
नमौं त्रिकाल त्रिलोकमैं, जिनप्रतिमा जयवंत ॥ ७६ ॥

चौपाई ।

कृत्रिम अकृत्रिम अभिराम । अर्हतायतन करौं प्रणाम ॥
अकृत्रिम अठहत्तर भौन । जंवूदीप सु करि चिंतौन ॥ ७७ ॥

कवित्त ।

महामेरु सोलह जिनमंदिर, हैं गजदंतनि ऊपर च्यार ।
जंवू शालमली ऊपर दो, कुलगिरि ऊपर छह निरधार ॥
चौतिस रूपाचल पर सोलह, है वक्षार विदेश मझार ।
जंवूदीप माहि अठहत्तर, चैत्यालय वंदौं सुखकार ॥ ७८ ॥
अठहत्तर इति प्रथम द्वितियमें, एक सतक अट्ठावन धार ।
एते ही पुन पुष्करार्द्धमैं, मनुषोत्तरगिर ऊपर च्यार ॥
नंदीश्वर वावन कुंडलवर, द्वीप इग्यारह माहि सु च्यार ।
चार रुचिकवर जिनमंदिर नमि, चारशतक अट्ठावन सार ७९

चौपाई ।

दीप तेरहें लौं अभिराम । चारशतक अट्ठावन धाम ॥
मंदिर प्रति जिनविंव प्रमान । इकसय आठ नमौ धरि ध्यान ८०
अधोलोक जिनमंदिर साख । सात करोड वहत्तर लाख ॥
देव भवनवासीके भौन । नमौं सु जिनगृह करि चिंतौन ॥ ८१
व्यंतर देवनके जिनगेह । ते वंदौ उरमें धरि नेह ॥
असंख्यात ज्योतिष्क विमान । तिनसवमैं जिनमंदिर जान ॥ ८२

दोहा ।

पंचप्रकार सु ज्योतिषी, संभुरमन परजंत ।
असंख्यात सुविमान इति, जिनमंदिर नमि संत ॥ ८३ ॥

चौपाई ।

स्वयंसिद्धरचनासुखरूप । श्रीजिनमंदिर कथन अनूप ॥
ऊर्द्धलोक जिनमंदिर घना । सो नितप्रति कीजे वंदना ॥८४

कवित्त ।

चौरासी लख सहस छ्यानवे, सातशतक महि निश्चय आहि ।
नव अनुदिश अरु पंच अनुत्तर, जिनमंदिर अति उत्तम ठाँहि॥
ऊर्द्धलोक इति जिन गृह ध्यावौं, बहुविधि धर्मभाव उमगाहि ।
ज्योतिस व्यंतर जिनगृह माही, असंख्यात जिनदेव कहाँहि८५

चौपाई ।

श्रीजिनधर्म सु परम पुनीत । मनवचतन धरि प्रेमप्रतीत ॥
रत्नत्रय वर धर्म सुजान । जाप्रसाद निश्चय कल्यान ॥ ८६ ॥
वस्तुस्वभाव सु धर्म प्रधान । शुद्ध जु निजस्वभाव पहचान ॥
जीवदयाको लहो सुमर्म । गहौ सु दशप्रकार जिनधर्म ॥८७॥

दशलक्षणधर्म ।

चौपाई ।

उत्तमक्षमा धरम सुखदाय । जहाँ तहाँ नहिं क्रोध कषाय ॥
उत्तममार्दव धरम प्रशाद । रहै न रंच अभिमान विषाद॥८८
उत्तमआर्जव सरल सुभाव । जहां न कपट कुटिलताभाव ॥
उत्तमसत्य धरम आदरै । मृषावाद कब हू नहिं धरै ॥ ८९ ॥
उत्तमशौच धरम परिपूर । सत्रविध लोभपाप करि दूर ॥
उत्तमसंजम रीति पुनीत । परपीड़ा तजि इंद्रिय जीत ॥९०॥

उत्तमविधि तप तपै सु बोध । संसारी इच्छा जु निरोध ॥
उत्तम त्याग धरम विस्तरै । जो आशा त्रिसना परिहरै ॥९१॥
उत्तम आकिंचन निःखेद । जहाँ परिग्रहपाप उछेद ॥
उत्तम ब्रह्मचर्य अविकार । जा प्रसाद पावै भवपार ॥ ९२ ॥
परम धरम परकाशन भान । वंदौं जिनवानी हित ठान ॥
नय प्रमानमय कथन अनूप । पूर्वापर अविरोध स्वरूप॥९३॥
श्रीजिनशासन है सत्यार्थ । सुरगसुकतिमारग परमार्थ ॥
जिनशासन सत्यार्थ विचार । पंडित दिढ उपासना धार॥९४
जव पूजौ तव जिनवरदेव । अन्यदेवकी करौ न सेव ॥
जव जपिये तव श्रीजिन नाम । अन्यनामतैं नहिं कछु काम९५
जव दरसै तव जिनवरभूप । ज्यौं दरसै निज शुद्धस्वरूप ॥
जव परसै तव जिनवरपाय । जा प्रसाद भवताप नशाय॥९६
जव नमिये तव प्रभूहजूर । ज्यौं भवभ्रमन पाप है दूर ॥
जव रचिये तव जिनगुणछंद । अन्य काव्य है अघका फंद॥९७
जव पढिये तव वेद सुच्यार[1] । ज्यौं निजवोध होय विसतार॥
जव लिखिये तव श्रीतत्त्वार्थ । जा प्रसाद है स्वार्थ परार्थ९८
जव सुनिये तव कथनपुरान । अन्यकथा सुनिये नहिं कान॥
ज्ञान नाशिका शील सुगंध । गहै न चहै विषय दुरगंध॥९९
जव लरिये तव करमनि साथ । जामैं सूरपनौ परमार्थ ॥
जव मरिये तव मरनसमाध । जो सव विधि छूटै अपराध॥१००

---

१ प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग येही चार वेद हैं ।

जब चढिये तब धरमजिहाज । जो भवसागर तरन इलाज ॥
जब चलिये तब तीरथ थान । जो सनमुख शिवपुर प्रस्थान १०१
जब चखिये तब रस वैराग । अन्य जु रस तजिये अनुराग ॥
जब बोलै तब वचन सँभाल । जामैं है सुधरम प्रतिपाल १०२

दोहा ।

हैं बहु भेद सुधर्मके, अंग अनेकप्रकार ।
सो सबहीतैं रुचि धरैं, सम्यकदर्शनसार ॥ १०३ ॥
सप्त क्षेत्र धन बोय कैं, फल लीजे निजसाथ ॥
जात्रा[1]सर धौ लीजिये, बहते पानी हाथ ॥ १०४ ॥
सप्त क्षेत्र धन खरचतैं, इह परभव कल्यान ।
धरिवेमैं दुहुं एकसम, रूपो अरु पाखान ॥ १०५ ॥
श्रीजिनभवन सु बिंब रचि, परम प्रतिष्ठा ख्यात ।
पूजन शास्त्र सु दानशुभ, तीर्थक्षेत्र इति सात ॥ १०६ ॥

चौपाई ।

श्रीजिनबिंब करावे सार । रचै सु जिनमंदिर विसतार ॥
विधिपूरबक सुप्रतिष्ठा करे । जिनपूजा सुरीत आदरै ॥ १०७

सोरठा ।

करिय मरम्मत सार, पुराचीन जिनभवनका ।
लखिये पुण्य अपार, जीर्णोद्धार नवीनसम ॥ १०८ ॥

---

1 यात्राके निमित्तसे ।

चौपाई ।

शास्त्रलिखावै बहुधन देहि । औरनिकौं जु पढावै जेह ॥
संघसहित उतसाह बढाय । तीर्थक्षेत्र वंदनकौं जाय ॥१०९॥
च्यार प्रकार दान जो देय । वह नरभवको लाहो लेय ॥
यह विधि सप्तक्षेत्रमैं सार । धन खरचै अटूट भंडार॥११०॥
सात सुक्षेत्र माहिं धन बोय । अति उत्कृष्ट सु फल ले सोय॥
धर्ममाहि धन खर्चै घना । धरै आप उत्तम भावना ॥१११॥
श्रीगुरु धर्मवंत सुमहंत । परमधरम उपदेष्टा संत ॥
तिनकी दिढ उपासना धार । धर्म प्रभाव करै विस्तार॥११२

इति श्री धर्मरत्नोद्योतग्रंथे उपासना नाम प्रथमोऽधिकारः ॥ १ ॥

अथ प्रमाणाधिकारः प्रारभ्यते।

दोहा।

प्रथम नमौं पद आसका, बहु प्रकार थुति ठान ॥
जिनके वचनागम मिले, होय सु ज्ञान प्रमान ॥ १ ॥
कर्म घातिया घातके, कियो सु आतम काज।
परम सुमंगल धरमगुरु, लोकोत्तम जिनराज ॥ २ ॥

आप्तागमका स्तवन।

दोहा।

मोहकर्मके नाशतें, रागदोष नशि जाय।
इच्छा दुख दूषन मिटै, प्रगटै गुणसमुदाय ॥ ३ ॥
सम्यक ज्ञान विरागता, बढत बढत बढ़ि जाय।
वीतराग सर्वज्ञपद, पूर्णब्रह्म सुखदाय ॥ ४ ॥
विनु इच्छा बानी खिरै, विन इच्छा सु विहार।
नामकर्म शुभजोग इति, पुण्यप्रकृति व्यवहार ॥ ५ ॥
सहजसुभावे मेघ ज्यौं, गरजै बरसै वारि।
गमन करै अरु थिति घटै, यह परतक्ष विचार ॥ ६ ॥
विन इच्छा भगवंतजी, करहिं सभा उपकार।
चिंतामन सुरतरु सहज, है ज्यौं फलदातार ॥ ७ ॥
सुरनरसभासमूहको, श्रीजिनवर सुखदाय।
जैसें कमल विकाशमैं, दिनकर सहज सहाय ॥ ८ ॥

इंद्र रच्यौ बहु भक्तितैं, समवशरन सुविशाल ॥
पै श्रीजिन राजै तहां, अंतरीक्ष गुणमाल ॥ ९ ॥
ज्यौं पारस संयोगतैं, लोह कनकद्युति जोय ।
श्रीजिनपद शरना गहे, परमातमपद होय ॥ १० ॥
श्री सरवज्ञ शरना गहे, होय सुज्ञान उद्योत ॥
प्रजलित्त दीपकके मिले, प्रगटै वाती ज्योत ॥ ११ ॥
कोइप्रकार इकवार जहँ, प्रगटै केवल भान ।
फेर कवहु इह नहिं छिपै, इम सामर्थ्य प्रधान ॥ १२ ॥
निश्चयशक्ति सु जीवकी, केवलज्ञान महान ।
जगवासी अल्पज्ञको, वृथा ज्ञान अभिमान ॥ १३ ॥
क्रोधादिक हास्यादि जे, हैं कषाय मिथ्यात ।
ते सव ही परभाव तजि, मोहप्रकृतिकी जात ॥ १४ ॥
वहिरातम दुख दूर करि, अंतरातमा होय ।
परमातम पद जो लहै, सुखी कहावे सोय ॥ १५ ॥
नहिं इच्छा कांक्षा नहीं, नहिं आकुलता रंच ।
कृत्यकृत्य परमातमा, पूर्ण ब्रह्म सुख संच ॥ १६ ॥
हैं पांचौं इंद्रिय तदपि, इंद्रियवश नहिं ज्ञान ।
परम अतिंद्रिय ज्ञानमय, सहज सुखी भगवान ॥ १७ ॥
जिनकी दिव्यधुनि थकी, सत्यारथ उपदेश ।
भव्य सुहित प्रगटै सहज, रहै न भ्रमतम लेश ॥ १८ ॥
जिनधुनि सुनि गणधर रच्यौ, द्वादशांग विस्तार ।
सम्यकज्ञानप्रमाणश्रुत, महिमा अगम अपार ॥ १९ ॥

आचारांग सु आदि ले, दृष्टिवाद परजंत।
प्रणमौं जिनवाणी विमल, द्वादशांग जयवंत ॥ २० ॥

श्रुतप्रमाण परमागम द्वादशांग ।

चौपाई १६ मात्रा ।

प्रथमहि आचारांग सुवानी । मुनि आचार सार सुखदानी ॥
पद अष्टादश सहस जु ध्यावौं । जा प्रसाद मैं मुनिव्रत पावौं २१

दूजो सूत्र कृतांग उदारा । कथन सुज्ञान क्रिया मत सारा ॥
पद छत्तीस सहस सुखकारी । शब्दब्रह्म पूजौं भव तारी ॥ २२॥

बहुपदार्थ थानांग बताये । इक द्वै त्रय इत्यादि बधाये ॥
पद सहस्र व्यालीस विराजै । नमहू स्थानाअंग स्वकाजे ॥ २३

क्षेत्र समान पंच पैंताला । इन आदिक समरीत विशाला ॥
इकलख चौंसठसहस सुपद सुनि । समवायांग जजौं श्रीजिनधुनि॥

जिनपतितैं गणपति हित लायौ । साठ सहस प्रश्नोत्तर पायौ ॥
पद व्याख्याप्रज्ञपत विस्तारा । दोयलाख बसुवीसहजारा ॥२५

श्रीजिनपंचकल्याणक वरनन । ज्ञातृकथा यथार्थ महिमा गन।
पांचलाख छप्पन हज्जारा । प्रनमौं पद सु महात्म अपारा ॥२६

बहुविध क्रिया मंत्र श्रावकव्रत। पढि उपासकाध्ययन सु विधिवत॥
सत्तर सहस इग्यारह लाखा। पूजौं पद अणुव्रत अभिलाखा॥२७॥

सहि उपसर्ग भये भवपारे । दश दश मुनि सब जिनके वारे॥
पूजौं पद अँतकृत दश सारा । तेइस लख बसुवीसहजारा २८

दश दश मुनि सव जिनके वारे। अनुत्तरोपपादिक पद धारे॥
लच्छ बांनवें सहस चँवाला। प्रणमौं प्रवचन रचनविशाला २९
गुप्त प्रश्न उद्धार वताये। अंग प्रश्नव्याकरण कहाये॥
लख तिरानवे सोल हजारा। पद प्रनमौं गुरु ज्ञान अपारा३०
करमप्रकृति विपाक विधि सारा। कथन विपाकसूत्र विस्तारा॥
एक कोड़ि चौरासी लाखा। प्रनमौं पद शिवसुख अभिलाखा ३१
चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखा। दोय सहस्र सुपद अभिलाखा॥
आचारांगादिक सु महंता। जोड़ विपाकसूत्र परजंता॥३२॥

दोहा।

प्रणमि इग्यारह अंग उर, धरौं अधिक अल्हाद।
नमौं वारमौ अंग शुभ, नाम जु दृष्टिप्रवाद॥ ३३ ॥

चौपाई १६ मात्रा।

दृष्टिप्रवाद सु अंग प्रमानौ। एक शतक वसु कोड सु जानौ॥
अड़सट लख छप्पन हज्जारा। पांच अधिक पद पूजौं सारा३४

कवित्त।

दृष्टिप्रवाद अँग वारहवाँ तामैं पांच भेद विस्तार।
प्रथम भेद परिकर्म तासुके पांच सु भेदांतर अवधार॥
दूजो भेद सूत्र है तीजौ श्रीप्रथमानुयोग सुखकार।
चौदह पूर्व सु चौथा पंचम-भेद चूलिका पंचप्रकार[1]॥३५॥

---

१ प्रथम पंचपरिकर्म, द्वितीय सूत्र, तृतीय प्रथमानुयोग, चतुर्थ चतुर्दशपूर्व, पंचम–पंचचूलिका।

पंचपरिकर्म नाम।

चौपाई।

चंद्र प्रज्ञप्ति अरु सूर्यप्रज्ञप्ति। पुनः सु जंवूदीपप्रज्ञप्ति॥
सर्व दीपसागर परज्ञप्ति। है पंचम व्याख्यापरज्ञप्ति॥ ३६॥

छंदमदावलिप्तकपोल तथा रोला।

प्रथम सु चंद्रप्रज्ञप्ति कथन शुभ चंद्रविमानौ।
छत्तिस लाख रु पांच सहस पद संख्या जानौ॥
गतिविशेष सुविमान चंद्र द्युति विभो कथन वर।
प्रनमौं प्रवचन रचन सुमनवचतनकरि शिर धर॥३७॥

द्वितिय सु सूरप्रज्ञप्ति कथन श्रीगुरु समझाये।
भानविमान विभव गमनादिक भेद बताये॥
पांच लाख त्रय सहस सु पदसंख्या परमानी।
प्रनमौ निजहित हेत सु सत्यारथजिनवानी॥ ३८॥

तृतिय सु जंबूदीप नाम प्रज्ञप्ति विराजै।
जामैं बहु विस्तार सहित वरनन छवि छाजै॥
तीनलाख पचीस सहस पद संख्या पाये।
श्रीजिनधुनि सुनि सुहित हेत हम पूजन आये॥३९॥

सर्व दीपसागर सु कथन सत्यारथ सोहै।
बावन लाख छतीस हजार सु पद मन मोहै॥
नमौं दीपसागरप्रज्ञप्ति जिनवरकी वानी।
पूजनीक है त्रिजगमाहि पंडित परमानी॥ ४०॥

जीवादिक सु पदार्थ कथन अद्भुतरचना जहँ ।
वहुविशेष संजुक्त कथन व्याख्याप्रज्ञप्तिमहँ ॥
पद चौरासीलाख सहस छत्तीस सु हित धर ।
सारद पद अरविंद यजौं वसु द्रव्य लेयकर ॥ ४१ ॥

दोहा ।

नमौं पंच परिकर्म शुभ, कथन प्रज्ञप्ति उदार ।
एक कोडि इक्यासि लख, पंच सहस पद सार ॥ ४२ ॥

सूत्र वर्नन ।

रोला ।

दुतिय भेद श्रीसूत्र तास पद लच्छ अठासी ।
जा प्रशाद मिथ्याविवाद कहुं निकट न आसी ॥
त्रिविध शुद्धता धारि भव्य शिव सनमुख हूजौ ।
श्री सर्वज्ञ मुखारविंदकी धुनि नित पूजौ ॥ ४३ ॥

अनुयोग वर्नन ।

पांच सहस पद माहि प्रथम अनुयोग सु वरनन ।
त्रेसठ पुरुप प्रधान सकल सु कथन पुरान गन ॥
जा प्रशाद सम्यक्त्व रतनके सन्मुख हूजौ ।
श्रीसरवज्ञमुखारविंद की धुनि नित पूजौ ॥ ४४ ॥

चौदहपूर्व वर्नन ।

दोहा ।

दृष्टि प्रवाद सु अंगमैं, चौथा भेद महान ।
नमौं चतुर्दश पूर्व श्रुत, भक्तिभाव उर आन ॥ ४५ ॥

रोला ।

प्रथम पूर्व उत्पाद तास पद एक कोड़ि भन ।
सर्वद्रव्य उतपाद रु व्यय ध्रुव है सत वरनन ॥
मोक्षमार्ग निर्बाध सु जिनवानी दरसाये ।
रुचि प्रतीत उर प्रीत सहित हम सीस नमाये ॥ ४६॥

कहे द्रव्य छह सप्त तत्त्व सु पदारथ नौ विधि ।
कथन गहन तत्त्वार्थ सु है सत्यार्थ वचननिधि ॥
अति प्रधान अग्रायनीय पद पूर्व सु दूजो ।
लच्छ छ्यानवें अर्घ लेय भवि नितप्रति पूजो ॥४७॥

तृतिय पूर्व वीर्यानुवाद पद सत्तर लाखा ।
वस्तु तने सामर्थ्य वीर्य सत्यारथ भाखा ॥
नमौं सरस्वति मात सु आयो सरन तिहारी ।
पूजौं पद अरविंद व्यक्त कर शक्ति हमारी ॥ ४८ ॥

अस्तिनास्तिपरवाद पूर्व चौथा शुभ दरसै ।
साठ लक्ष पद परमसुधारस वानी वरसै ॥
विधि निषेध ससंग भंग सु अभंग पताका ।
पूजौं जिनवर वचन रचन सत्यारथ शाका ॥ ४९ ॥

पंचम ज्ञानप्रवाद पूर्व अद्भुत रचना जू ।
एक ऊन तसु एक कोड़ पद कथन सुना जू ॥
पंचप्रकार सुज्ञान भेद फल विषय वताये ।
श्रीजिनवानी सुहित हेत हम सुनि सुख पाये ॥५०॥

छठा सु सत्यप्रवाद पूर्वपद एक कोड़ि छह ।
सत्य असत्य सु वचन भेद निःखेद कथन तहँ ॥
भाख्या भेद अनेक सत्य दश भेद वखानी ।
जिनवानी नित नमौं सु वागेसुरी भवानी ॥ ५१ ॥
पद छत्तीस करोर सातमो पूरब जानौ ।
आतमके करतव्य भोगतव्यादि वखानौ ॥
नित्य अनित्य अभेद भेद सव श्रीपति भाखे ।
प्रवचन भक्ति प्रशाद सु हम अनुभवरस चाखे ॥५२॥
अष्टम कर्मप्रवाद पूर्व नमि एक कोर अर ।
अस्सी लख वसु अधिक पदनिमैं है सु कथन वर ॥
कर्म उदय थिति वंध खिरनि विधि वरने सव ही ।
श्रीदिव्यध्वनि यजौं लेय कर अर्घ जु अव ही ॥५३॥
नवम सु प्रत्याख्यान पूर्व पद चौरासी लछ ।
तहँ संवर विधि द्रव्य भाव इत्यादि कहे दछ ॥
उपसर्गादिक सहन सुविधि अघ त्याग वतायौ ।
पूजौं जिनवचभान भव्यपंकज विकसायौ ॥ ५४ ॥
इक करोर दश लाख सु पद विद्यानुवाद महँ ।
क्षुद्र सातसय महा पांचसय विद्याविधि तहँ ॥
मंत्र तंत्र वसु निमितज्ञान वर कथन वखानी ।
विद्या उत्पति मूल सु प्रनमौ श्रीजिनवानी ॥ ५५ ॥
छव्विस कोड़ प्रमान कहे कल्यानवाद पद ।
जिनकल्यानक आदि सुवरनन है मंगलप्रद ॥

हलधरादि अवतारमांहि स्वप्नादि बताये ।
प्रनमौं पूर्वकल्याणवाद कल्याण उपाये ॥ ५६ ॥
प्राणावाद सु पूर्व प्राण रक्षा बतलाये ।
मंत्र तंत्र वैद्यक सु स्वरोदय आदिक गाये ॥
विद्या उतपति मूल सु जिनवानी जानी ज्यौ ।
पूजौं पद तेरह करोर मम रक्षा कीज्यौ ॥ ५७ ॥
कला बहत्तर पुरुष रु चौसठ तियकी गाई ।
गर्भाधानादिक सु सैंकरौं क्रिया बताई ॥
अलंकार विधि छंद शास्त्र संगीतादिक सद ।
प्रणमौं क्रियाविशाल सु पूरब नवकरोर पद ॥ ५८ ॥
लोकबिंदु वर नाम चौदमौ पूर्व विराजै ।
द्वादश कोड रु लाख पचास सु पद छवि छाजै ॥
तिहूं लोकका कथन तथा बहु बीजगणित गुनि ।
मोक्षमार्ग परकाश कियौ श्रीजिनधुनि सुनि मुनि॥५९॥

दोहा ।

पंचानवे करोर अरु, लख पचास पद पांच ।
चौदह पूरब पदनिको, जोड़ लखो इति सांच ॥ ६० ॥

पंच चूलिका वर्णन ।

छंद रोला ।

जल थंभन जलगमन अग्नि भक्षन वरषावन ।
पावक माहिं प्रवेश इत्यादि सु विद्या पावन ॥

दोय कोटि नव लाख नवासी सहस जुगम सत ।
प्रणमौं पद जलगता सु चूलिका रचनवचन सत॥६१॥
कठिन भूमिथलमैं प्रवेश परवतमैं पावै ।
उक्तियुक्ति विद्याविलास वह गुन प्रगटावै ॥
दोय कोट नवलाख नवासी सहस जुगम सत ।
पद सु चूलिका स्थलगता जु यह विद्याविधिवत॥६२॥
इंद्रजाल इत्यादि बहुत विद्या गुणराशी ।
मंत्र यंत्र बहुतंत्र तपश्चरणादि प्रकाशी ॥
मायागता सु नाम चूलिका पद पूरववत ।
धन्य धन्य जिनवचन रचन द्यो मोको सतमत ॥६३॥
सिंहादिकको रूप पलटि ले चाहे तैसो ।
है लच्छन चित्राम रु धातुरसायन ऐसो ॥
मंत्र यंत्र बहुतपश्चरन सु स्वरूपकथन सत ।
रूपगता इति नाम चूलिका पद पूरववत ॥ ६४ ॥
नभगत गमन इत्यादि सु विद्यारीत घनेरी ।
गूँथे ग्रंथ निग्रंथ सु जिनवानी हितकेरी ॥
जाप्रसाद भ्रम मिटै सहज प्रगटै निज सतमत ।
नमि पंचमि नभगता सु चूलिका पद पूरववत ॥६५॥

चौपाई १६ मात्रा ।

दृष्टिप्रवाद सु कथन अपारा । पंच भेद वरनन विस्तारा ॥
वंदौ मनवचतनकर शिर धर । ज्ञान भान मनमोहतिमिर हर ६६

इकसय बारह कोर सु लीजे । अवर तिरासी लाख गणीजे ॥
अट्ठावन्न सहस्र पाँच पद । पूजौं द्वादशांग वानी सद ॥६७॥

दोहा ।

अंग अंगबाहिज विमल, उभय भेद श्रुत ज्ञान ।
द्रव्य भाव शुचि रुचि नमौं, स्यादवाद हित ठान ॥ ६८॥
अंगबाह्य जे जिनवचन, परकीर्णक दश च्यार ।
आय विराजो निकट मम, नमौं सु कर शिर धार ॥६९॥

चौपाई १६ मात्रा ।

आठ करोर रु एक लाख वर । इक्यासी सय अरु पचहत्तर ॥
ए स्ब परकीर्णकके अक्षर । नमौं सु मनवचतनकर शिरधर७०

चौदह प्रकीर्णक वर्णन ।

सोरठा ।

प्रथम प्रकीर्णक नाम । 'सामायिक' सु विधान जू ।
करौं त्रिकाल प्रनाम । मनवचकाय विशुद्ध विधि ॥ ७१ ॥
'स्तव चौवीसजिनंद' । दुतिय प्रकीर्णक कथन जू ।
पूरइ परमानंद । विमल सुगुण मैं स्तव नमौं ॥ ७२ ॥
वंदनरीत पुनीत, त्रिभुवनपति जिनदेव पद ।
प्रनमौं उर धर प्रीत, त्रितिय प्रकीर्णक 'वंदना' ॥ ७३ ॥
वरने बहुत प्रकार, क्रियाभेद प्रतिक्रमण जू ।
दोष त्याग गुणधार, यजौं प्रकीर्णक 'प्रतिक्रमन' ॥ ७४ ॥
दर्शन ज्ञान चरित्र, अरु उपचार विनय भलो ॥
विनय कथन सुपवित्र, नमौ प्रकीर्णक 'वैनयिक' ॥ ७५ ॥

भक्ति क्रिया सु प्रणाम, देववंदनादिक क्रिया।
है 'कृतकर्म' सुनाम, छठा प्रकीर्णक कथन वर ॥७६ ॥
है सुकथन सुख धाम, केतिक क्रिया मुनिंद की।
'दशवैकालिक' नाम, नमौं प्रकीर्णक सातमौ ॥ ७७ ॥
उपसर्गादि अपार, परिसह सहिवेकी सुविधि।
अष्टम नाम उदार, नमौ 'उत्तराध्ययन' जू ॥ ७८ ॥
साधु योग्य आचार, प्रायश्चित्त क्रिया कही।
नाम 'कल्पव्यवहार', नवम प्रकीर्णक पूजिये ॥ ७९ ॥
द्रव्य क्षेत्र अरु काल, भावयोग्यविधि मुनिक्रिया।
'कल्पाकल्पविशाल', दशम प्रकीर्णक कथन जू ॥ ८० ॥
जिनकल्पी मुनिराय, थविर कल्पिको कथन वर।
जिनवानी सुखदाय, 'महाकल्प' वरनन नमौ ॥ ८१ ॥
किह कारनकरि जीव, उपजै देवादिक सही।
सो सब कथन सदीव, 'पुंडरीक, वरनन नमौ ॥ ८२ ॥
महत ऋद्धिके देव, होवैं किह कारण थकी।
सो वरनन बहु भेव, नमौं 'महा पुंडरीक' नू ॥ ८३ ॥
दोष शुद्धता हेत, प्रायश्चित वरनन घनो।
प्रनमौं भक्ति सचेत, अंतमनाम 'निशीतका' ॥ ८४ ॥

दोहा।

अंगवाह्य वानी विमल, परकीर्णक दश च्यार।
प्रनमौं इति वरनन घनों, महिमा अगम अपार ॥ ८५ ॥

सोरठा ।

जिनधुनि सुनि गणदेव, अंग अंगबाहिज रच्यौ ।
कीजे नितप्रति सेव, स्यादवाद वानी विमल ॥ ८६ ॥

कुंडलिया ।

जिनधुनि सुनी निरक्षरी, गणधर गूँथ्यो ग्रंथ ।
ताहीके अनुसार है, सत्यारथ शिवपंथ ॥
सत्यारथ शिवपंथ पाय निग्रंथ सुव्रतधर ।
मूलग्रंथ श्रीअंगपूर्वको आश्रय लेकर ॥
रचे ग्रंथ संछेप शिष्य प्रतिशिष्यहेत मुनि ।
ऐसे सुगुरुपरंपरायतें हम सुनि जिनधुनि ॥ ८७ ॥

दोहा ।

क्षीरोदधिको सलिल ज्यों, लघुभाजन भरलेय ।
तेहू अधिक महात्म्य मय, उपादेय हैं पेय ॥ ८८ ॥
परंपराको अर्थ ले, है जु अजहुं व्याख्यान ।
सो संस्कृत प्राकृत वचन, भाषा सर्व प्रमान ॥ ८९ ॥
केवल ज्ञान समान है, सत्यारथ श्रुत ज्ञान ।
केवल ज्ञान प्रतक्ष है, श्रुत परोक्ष परमान ॥ ९० ॥
श्रीजिन परमातम प्रभू, निरावरन अविकार ।
सरब दरब परजायको, लखै सर्व परकार ॥ ९१ ॥
सरब दरब परजायका, कथनागम परमान ।
अध्यातम सुविशेषतैं, निजस्वरूप पहिचान ॥ ९२ ॥

अनेकांत पट विमलशुचि, सप्तभंग सुतरंग ।
स्यादवाद लच्छनसहित, जिनधुनि धुजा उतंग ॥ ९३ ॥
परम चमत्कृत कथन अति, निरावाध वहु भेद ।
जिनशासन जयवतं जग, नमौं आर्ष चहुं वेद ॥ ९४ ॥

चारवेदका वर्नन ।

दोहा ।

कथा पुण्यजन पुरुषकी, लोकभेद परिणाम ।
क्रियातत्त्वनिर्णय यथा, च्यार वेद अभिराम ॥ ९५ ॥
अलंकार अधिकार है, गणित सु विचारीत ।
नीतिवचन वा न्यायतैं, च्यारों वेद पुनीत ॥ ९६ ॥
पाप पुण्य फल जानिकैं, पहिचानै परिणाम ।
होय उद्यमी आपमैं, रमि रहै अपने ठाम ॥ ९७ ॥

कवित्त ।

प्रणमौं श्रीकरणानुयोग अतिसूक्ष्म प्ररूपण तत्त्व अभिराम ।
है त्रैलोक्य स्वरूप सर्व ही, वस्तुतने यथार्थ परिणाम ॥
हेतुवाद आगम द्रव्यानुयोग है वहुनयप्रमाण सुखधाम ।
नमौं अध्यात्म ग्रंथ हितकारी, जाप्रशाद निजथल विश्राम९८

सवैया ।

त्रेसठ शलाका महापुरुषकी कथा जु पु-
रानको वखान प्रथमानुयोग वेद है ।
गुणस्थान मारगणास्थान जीव-कर्मकांड,
कथन त्रिलोक करणानुयोग भेद है ॥

साधु आचरन शुद्ध श्रावक क्रिया पवित्र,
चरणानुयोग ज्यौं प्रमादको उछेद है ।
दरव्यानुयोग षटद्रव्य सप्ततत्वादिक,
भेद ज्ञान नयप्रमाण वस्तु भेदाभेद है ॥ ९९ ॥
वंदौं गुरु नामी उमास्वामी जिन 'मोक्षशास्त्र'
रचि शिवमारगका उपदेश दिया है ।
पूज्यपादजूने ताकी वृत्ति सर्वारथसिद्धि,
रचि पंडितों की सभामाहिं जस लिया है ॥
वंदौं विद्यानंद जु श्लोकवार्त्तिक रच्यौ,
राजवारतिक अकलंकदेव किया है ।
श्री स्वामी समंतभद्र महाभाष्य ग्रंथ रच्यौ,
वंदौं वच काय शुद्ध बुद्धधार हिया है ॥ १०० ॥

कवित्व गमकत्व वादित्व वाग्मित्वादि अनेकप्रकार विद्याके पारगामी गुरुदेवोंका स्तवन ।

कवित्त ।

वंदौं कवि मुनि मूल उधर्त्ता गमक साधु टीका करतार ।
वाद जीत पर सभा प्रबोधे वागमित्व विद्या अधिकार ॥
शब्दागम युक्त्यागम श्रीपरमागम विद्याके भंडार ।
ते गुरुदेव बसो उर मेरे विघ्नहरन मंगल करतार ॥ १०१ ॥
श्रीस्वामी सामंतभद्र परमार्हताचारज पद सार ।
जिनके वाक्अतिशय महिमा कोउ परवादी नहिं सकै सम्हार ॥

हुती वादशाला चहुं दिश तहँ वज्यौ सु जिनका जीत नगार।
ते गुरुदेव वसौ उर मेरे विघ्नहरन मंगल करतार ॥ १०२ ॥
आचारज श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवरती पद धार।
रच्यौ परम गंभीर महासिद्धांत सु गुरुवर गोमटसार ॥
।
.... (१) ॥ १०३ ॥

(१) मूल पुस्तकमें ४७ का पत्र नहीं था। वहुतही तलास किया गया। दूसरी प्रतिका आरामें तलास किया परंतु मिला नहीं। लाचार हमभी एक पत्र खाली छोड़ देते हैं। यदि कालांतरमें दूसरी प्रति मिलजायगी तो हम १ पेज छपाकर सबकेपास भेजदेंगे, नहीं तो लाचारी है। (प्रकाशक)।

अष्टसती कृति सुख परधान । तापै तिलक अनेक सु जान ॥
परम प्रमाण उद्योत अखंड । ग्रंथ प्रमेयकमलमार्तण्ड ॥११२॥

ग्रंथ त्रिलोकसार गंभीर । लखौ त्रिलोक स्वरूप सु वीर ॥
नाम द्रव्यसंग्रह सुनिकेत । रचना अल्प वहुत सुख हेत ११३

स्वामी कार्तिकेय मुनिराय । वाल ब्रह्मचारी सुखदाय ॥
रचियौ अनुप्रेक्षा शुभग्रंथ । तत्त्वस्वरूप प्रगट शिवपंथ॥११४॥

स्वामी वट्टकेर कृत सार । मुनिव्रतक्रिया सु मूलाचार ॥
वसुनंदी सिद्धांती देव । प्राकृत यत्याचार रचेव ॥ ११५ ॥

ज्ञानार्णव सु ग्रंथ हितकार । रचि शुभचंद्राचार्य उदार ॥
रचि योगींद्रदेव सुप्रसिद्ध । परमातमाप्रकाश सु सिद्ध ११६

श्रीचामुंडरायकृत सार । है सु ग्रंथ चारित्रासार ॥
शिवकोटी मुनिकृत शिवसाधन। उत्तमार्थ भगवतिआराधन ११७

श्रुत पुरुपारथसिद्धिउपाय । अमृतचंद्र आचार्य रचाय ॥
रचना संस्कृतआर्या भले । जा प्रशाद अणुव्रतविधि पले ११८

रत्नकरंडश्रावकाचार । वृहतस्वयंभू रचना सार ॥
यशस्तिलक काव्य सु महान । न्यायकुमुदचंद्रोदय जान ११९

श्रीगुणभद्राचारज रच्यौ । आतमानुशासन गुण सच्यौ ॥
वहुप्रकार उपदेश जु दियौ । पदमनंदि पच्चीसी कियौ॥१२०॥

है जैनेंद्रव्याकरन सार । शब्दागम गंभीर अपार ॥
लघु अरु वृहत सु वृत्ती दोय। जातैं शब्दवोध उर होय१२१

संस्कृत प्राकृत उभय प्रकार । रचना श्रीनयचक्र विचार ॥
रयणासार अराधनसार । तत्त्वसार निज हृदय सु धार॥१२२॥
प्राकृतगाथा ग्रंथ सटीक । नाम अष्टपाहुड धरि ठीक ॥
तथा और हू प्राभृत घना । कुंदकुंद मुनिवर कृत बना १२३
है सु ग्रंथ श्रीपार्श्वपुरान । और हु घनाप्रमान वखान ॥
कथाकोश पुण्यास्रव टेक । उत्तम पुरुष चरित्र अनेक ॥१२४॥

चौपाई १६ मात्रा ।

इन आदिक वहु नाम अपारा । तिनका कथन वहुतविस्तारा ॥
चहुं अनुयोग ग्रंथ सुखकारी । तिनको नितप्रति नमन हमारी १२५

सोरठा ।

हैं जु हजारां ग्रंथ, करता जे मुनि ग्रंथ वा ।
जिनशासन शिवपंथ, नंदौ वृद्धौ भवि कहत ॥ १२६ ॥

दोहा ।

सकल जंतु जन हित चहैं, कहैं धर्म उपदेश ।
रहैं सु ज्ञानानंदमय, श्रीगुरु विगत कलेश ॥ १२७ ॥
वक्तापुरुष प्रमाणतैं, वचनागम परमान ।
आगमके परमाणतैं, हैं पदार्थ परमान ॥ १२८ ॥
सत्यारथ तत्त्वार्थके, वक्ता गुरु निर्ग्रंथ ।
श्रोता शुभ श्रावक सुधी, यहै अनादि सुपंथ ॥ १२९ ॥
हैं विरले वक्तापुरुष, विरले श्रोता जान ।
हैं विरले या समयमैं, तत्त्वारथ रुचिवान ॥ १३० ॥

रुचितैं सुनै सुशास्त्रको, हटग्राही नहिं होय ।
प्रश्न करै निर्णयधरै, उत्तम श्रोता सोय ॥ १३१ ॥
मोहग्रसित चहुंगतिविषै, कहूँ न पावै थाह ॥
जैनवचन दीपक मिलै, प्रगटै शिवपुरराह ॥ १३२ ॥
जाका गुरु सर्वज्ञ है, सो किम भूलै बात ।
जो भूलै तौ पूछ ले, श्रीजिनधुनि विख्यात ॥ १३३ ॥

पांच ज्ञान ।

मति श्रुत अवधि सु ज्ञान है, मन परजय अमलान ।
तथा सु केवलज्ञान जुत, पंचप्रकार सु ज्ञान ॥ १३४ ॥
मति श्रुत अवधादिक सही, पांचौं सम्यक ज्ञान ।
दोय भेदतैं हैं यही, प्रतछ परोछ प्रमान ॥ १३५ ॥
मति श्रुत ज्ञान परोक्ष हैं, शेषज्ञान जे तीन ।
अवधि आदि प्रत्यक्ष इति, लखो सु भेद प्रवीन ॥ १३६ ॥
स्वार्थपरार्थ प्रमान दोउं, कहिये श्रीश्रुतज्ञान ।
और जु चारों ज्ञान निज, लहिये स्वार्थ प्रधान ॥ १३७ ॥
है सु ज्ञानमय वचनमय, श्रुतप्रमान दोऊं रूप ।
तातैं स्वपर उपकारमय, है सामर्थ्य अनूप ॥ १३८ ॥

पांच परोक्ष प्रमाण ।

स्मृति प्रत्यभिज्ञान पुन, तर्क और अनुमान ।
चार सु मति श्रुतसहित हैं, पंच परोक्षप्रमान ॥ १३९ ॥
देशावधि परमावधी, सर्वावधि सु प्रशस्त ।
तीन भेद है अवधिका, विषय सु रूपीवस्तु ॥ १४० ॥

रूपी पुद्गल द्रव्य है, वा संसारी जीव ।
निकट दूर इति वस्तुविषय, लखै सु औध सदीव ॥१४१॥

ऋजुमति तथा विपुल मति, मन परजय दो भेद ।
परमन सूक्ष्मवृत्तांतको, सब जानै निःखेद ॥ १४२ ॥

जोजन पैंतालीस लख, क्षेत्रमाहिं जे जीव ।
सुर नर पशु मनका सरब, जानै विषय सदीव ॥१४३॥

मति श्रुत देशावधि तथा, परमावधि अविकार ।
मन परजय इति ज्ञानका, भेद बहुत विस्तार ॥ १४४ ॥

सर्वावधि इक भेद है, तथा सु केवलज्ञान ।
है अभेद निश्चल सहज, एकस्वरूप महान ॥ १४५ ॥

है जेता जिहँ ज्ञान महिं, आवर्ण कर्मका भेद ।
तेताही तिस ज्ञानका, भेद लखो निःखेद ॥ १४६ ॥

मति श्रुत देशावधि लखो, कहूं विपर्जयरूप ।
कहूं सु सम्यकरूप हैं, तीनौ ज्ञान अनूप ॥ १४७ ॥

परमावधि सर्वावधी, दोउ, मनपर्जय ज्ञान ।
नहीं विपर्जय होंय ज्यौं, केवल सम्यकज्ञान ॥ १४८ ॥

बहु अज्ञानता परिहरै, हेय उपादे धार ।
तथा मेटिहै राग रुष, इति प्रमाणफल सार ॥ १४९ ॥

वस्तु सु नानाधर्मयुत, गहै प्रमाण पुनीत ।
एक धर्म ले वस्तुको, कहै सु नयकी रीत ॥ १५० ॥

द्रव्यार्थिकनय नित्य है, पर्जय अनित्य वखान ।
है नित्यानित्यातमक, वस्तुस्वरूप प्रमान ॥ १५१ ॥

दोउं नयके आधीन है, वस्तु स्वभावसदीव ।
जैसें दोउं कर दधि मथे, मिलै सु माखन घीव ॥१५२॥

निश्चय व्यवहारातमक, वस्तु स्वभाव त्रिकाल ।
यथा उचित सुग्रह न सजै,वजै सु दोउं करताल ॥१५३॥

नयप्रमाणतैं वस्तुका, होय यथार्थ सुवोध ।
स्यादवाद विद्या मिले, रहै न रंच विरोध ॥ १५४ ॥

उठै प्रमाण समुद्रमैं, नयकल्लोल अपार ।
स्यादवाद सुजहाज चढि, देखहु अजव वहार ॥ १५५ ॥

स्यात् कथंचित अर्थमय, अव्यय लखो सु वोध ।
वस्तुस्वभाव अनेक इति, दिखलावै अविरोध ॥ १५६ ॥

अनेकांत तत्त्वार्थके, ज्ञाता शुचि रुचिख्यात ।
सर्व वाक्यके आदिमैं, जानि लेहु पद 'स्यात' ॥ १५७ ॥

श्रुत प्रमाणका अंश है, नय जु अनेकप्रकार ।
नैगमादि वहु भेद है, है निश्चय व्यवहार ॥ १५८ ॥

गहै सु अपने विषयको, धरै न परतैं द्वेष ।
श्रुत प्रमाणतैं मिलिरहे, सो है सुनय विशेष ॥ १५९ ॥

करैं इकांत जु सर्वथा, धरैं सु परतैं द्वेष ।
ते प्रमाणतैं वाह्य वहु, नयाभास वहु भेष ॥ १६० ॥

नैगमादि नय कथन वहु, परमारथ उपचार।
सो समस्त ही मानिये, यथा उचित सुविचार॥ १६१॥
सवल प्रमाण सु सूत्रमैं, नय वहुमोती रूप।
स्यादवाद द्युत युत परम, माला दिपै अनूप॥ १६२॥

चौपाई।

सव संसारीको यह ज्ञान, पहिलै दर्शन पीछैं ज्ञान।
केवलि प्रभुकै युगपत होय, दरश ज्ञान उपयोग जु दोय १६३
इंद्रिय अरु मनतैं जो होय। मतिज्ञान वुध कहिये सोय॥
पहिलै मतिज्ञान प्रगटाय। पाछैं श्रुतज्ञान उपजाय॥ १६४॥
मतिज्ञानतैं वस्तु सु जान। ताहीका संवंध सु आन॥
औरवस्तुका होय जु ज्ञान। श्रुतज्ञान सोइ ज्ञान सुजान १६५

दोहा।

आप्तवचनको निमित लहि, प्रगटै ज्ञान प्रमान।
तत्त्ववोधनामादि जुत, सो श्रुतज्ञान प्रधान॥ १६६॥

चौपाई।

नेत्रादिकतैं ज्ञान प्रतक्ष। सो संव्यवहारिक प्रत्यक्ष॥
निश्चयतैं परोक्ष मति ज्ञान। है श्रुतज्ञान परोक्षप्रमान॥१६७॥
अवधिरु मन परिजय ये दोय। देश प्रतक्ष कहावैं सोय॥
सकल प्रतक्ष सु केवलज्ञान। वंदन करौं जोर जुग पान १६८
इंद्रियके आश्रय जो होय। पर आडेतैं रुकै जु कोय॥
पर सहायता गहै जु ज्ञान। सो सवही परोक्ष पहचान॥१६९॥

इंद्रियका आश्रय नहिं गहै । जो परतैं वाधा नहिं लहै ॥
रहै सु निज आतम आधार । सो परतक्ष्य ज्ञान निरधार१७०
मति अरु श्रुत यह ज्ञान जु दोय । सब ही 'जग' जीवनकै होय ॥
सो है कहूं प्रमाण स्वरूप । है कहूं अप्रमाण वहुरूप॥१७१॥
सम्यक निरणयार्थ जो ज्ञान । सो प्रमाणविधि कह्यौ पुरान ॥
और जु मिथ्या ज्ञान कुज्ञान । सो सब अप्रमान अघ खान १७२
प्रमाणाभास अनेकप्रकार । ताका निराकरन विस्तार ॥
जैन न्यायग्रंथनिमैं कहे । जातैं कछु संशय नहिं रहै ॥१७३॥

दोहा ।

ग्रंथ परीक्षामुख तथा श्लोकवार्तिक आद ।
लखि प्रमाण निर्णय सहज, रहै न भरम विषाद॥१७४॥

इति श्री धर्मरत्नोद्योतग्रंथमैं प्रमाणनाम द्वितीय
अधिकार समाप्त हुवा ॥ २ ॥

अथ प्रमेयाधिकारः प्रारभ्यते ।

दोहा ।

परम प्रमाता सुगुरुपद, कंज नमौ चित देय ।
सहज सुज्ञान प्रमाणमैं, दरसै सर्व प्रमेय ॥ १ ॥
स्यादवाद मतमैं सही, 'सम्यग्ज्ञान' प्रमाण ।
अरु सामान्य विशेषमय, सब प्रमेय पहचान ॥ २ ॥
है सामान्य विशेषमय, सब प्रमेय तहकीक ।
स्यादवाद मतमैं सही, वस्तुस्वरूप सु ठीक ॥ ३ ॥

द्रव्यलक्षण ।

द्रव्य सु लक्षण 'सत्' कहा, उत्पति व्यय ध्रुवरूप ।
'सत्' स्वरूप निजउर धरो, जिनवानी जु अनूप ॥ ४ ॥
उत्पत्ति व्यय ध्रुवरूप है, सर्व दरब जु अनाद ।
निज निज गुण परजाय मय, धरे सहज मरजाद ॥ ५ ॥

षट्द्रव्यनाम ।

जीव रु पुद्गल द्रव्य है, धर्म अधर्म नभ काल ।
स्वतः स्वभावे द्रव्य छह, है इति कथन विशाल ॥ ६ ॥

जीव अजीवादिका विशेष ।

ज्ञानस्वरूपी जीव है, अवर द्रव्य जे पांच ।
हैं अजीव निश्चयथकी, जडलक्षणमय सांच ॥ ७ ॥
पुद्गल रूपी द्रव्य है, अवर द्रव्य जे पंच ।
हैं जु अरूपी वस्तु तहं, वर्णादिक नहिं रंच ॥ ८ ॥

धर्म अधर्म नभ तीन ये, द्रव्य एक ही एक।
और जु तीनौ द्रव्य जे, हैं जु अनेक अनेक ॥ ९ ॥
भिन्न २ कालाणु हैं, द्रव्य असंख्य प्रमान।
लोकाकाशप्रदेश पै, रतनराशिवत जान ॥ १० ॥
जीव द्रव्य जु अनंत हैं, तातैं अधिक प्रमान।
पुद्गलद्रव्य अनंत हैं, इह सु बोध उर आन ॥ ११ ॥
जीवद्रव्य जु अनंत सब, भिन्न भिन्न ठहराय।
कोउ काहूतैं नहिं मिलै, इह निश्चय उर लाय ॥ १२ ॥

पंचअस्तिकाय।

विना काय इक काल है, अस्तिकाय हैं पाँच।
धरैं प्रदेश समूह ज्यौं, काय ऊपमा साँच ॥ १३ ॥

पंचास्तिकायके प्रदेशोंकी संख्या।

धर्म अधर्म इक जीवके, असंख्यात परदेश।
लोक समान जु जानिये तीनों द्रव्य विशेष ॥ १४ ॥

पुद्गलद्रव्यके प्रदेश तीनप्रकार।

।
॥[1] १५ ॥

आकाशद्रव्य।

लोक अलोकाकाश इक, द्रव्य अनंत प्रदेस।
अवगाहन गुणमय सहज, धरै सु शक्ति विशेस ॥ १६ ॥

---

१ मूल पुस्तकमें लिखनेसे रहा गया था। इससे यहांपर भी छोड़ दिया गया है।

सब मतमाहिं अनंतको, मानत हैं सु प्रमान।
कोउ कहै काल अनंत कोउ, नभ कोउ प्रकृति प्रधान १७

निःक्रियसक्रिय द्रव्य।

धर्म अधर्म अकाश अरु, कालद्रव्य ए च्यार।
हलन चलन नाहीं धरैं, करैं न कहूं विहार ॥ १८ ॥
हलन चलन अरु गमन कर, धरैं अनेक विकार।
जीव रु पुद्गल द्रव्य दो, क्रियावंत निर्धार ॥ १९ ॥

उपादाननिमित्तकारण।

उपादान निजशक्ति अरु, वाहिज विविधनिमित्त।
यों सु कार्यकी सिद्धता, भेदभाव धरि चित्त ॥ २० ॥
निमित्त रु नैमित्तिकपणा, वहुप्रकारके भाव।
आपुसमैं सब द्रव्यके, हैं जु अनादि बनाव ॥ २१ ॥

धर्मद्रव्यकृत उपकार।

जीव रु पुद्गल गमन मैं, करै धर्म उपकार।
मच्छादिकके गमनमैं, ज्यौं जल है सहकार ॥ २२ ॥

अधर्मद्रव्यकृत उपकार।

जड़ चेतनकी स्थितिमैं, है अधर्म सहकार।
पंथी जनकी स्थितिमैं ज्यौं तरुछाया सार ॥ २३ ॥

कालद्रव्यका स्वरूप उपकार।

निश्चय अरु व्यवहार है, काल जु दोय प्रकार।
है निश्चय कालाणु वहु, समयादिक व्यवहार ॥ २४ ॥

सरब दरब परिणमन में, हैं ज्यौं कारण सार ।
परिवर्त्तन लच्छन सहित, काल द्रव्य निर्द्धार ॥ २५ ॥

आकाशद्रव्य ।

सबतैं बडो सु द्रव्य नभ, भाजनके उनहार ।
जड चेतन सब द्रव्यकौं, है जागहँ दातार ॥ २६ ॥

पुद्गलद्रव्यके विशेषगुणलक्षण ।

है सपरस रस गंध अरु, वर्ण सु गुण परमान ।
एई च्यारौं गुण सहित, सब पुदगल पहिचान ॥ २७ ॥
वसु सपरस रस पंच दो, गंध वर्णविध पंच ।
च्यारौं गुण सविशेष तैं, वीस भेद सब संच ॥ २८ ॥
है पुद्गल परिणमन अति, सूक्ष्मरूप सर्वत्र ।
अज्ञानी समझे विना, कहै नहीं कछु अत्र ॥ २९ ॥
सूक्ष्मस्थूल सु भेद बहु, अणुस्कंध अत्यंत ।
गाढंगाढ सु भर रह्यौ, पुद्गलद्रव्य अनंत ॥ ३० ॥
देह रु श्वासोश्वास मन, इंद्रिय वचनउचार ।
सुख दुखादि है जीवको, पुद्गलकृत उपकार ॥ ३१ ॥
करैं परस्पर जीव ज्यौं, बहुप्रकार उपकार ।
गुरुशिष्यादि यथा तथा, स्वामी चाकरिकार ॥ ३२ ॥

पुद्गलोंका परस्पर उपकार ।

बहुप्रकार पुद्गलनिको आपुसमैं उपकार ।
कारण कार्यादिक घनो, है अनादि व्यवहार ॥ ३३ ॥

सामान्यद्रव्य स्वरूप ।

अर्थक्रियाकी वृत्ति है, सरव दरवके माहिं ।
है सु कार्यमय सर्वही, कोउ कूटस्थ जु नाहिं ॥ ३४ ॥
कोऊ द्रव्य कूटस्थ नहिं, सव ही क्रियास्वरूप ।
निजनिज गुणपरजायकौं, द्रवै निरंतररूप ॥ ३५ ॥
सहभावी गुण है सही, क्रमभावी परजाय ।
निजनिज गुण परजायजुत, सरवदरव ठहराय ॥ ३६ ॥
हैं सहभावी शाश्वते, गुण सु द्रव्यके ठौर ।
रहैं द्रव्य आश्रय सु यह, गुणमैं गुण नहिं और ॥ ३७ ॥
गुणास्तित्व वस्तुत्व अरु, अगुरुलघुत्व विचार ।
प्रमेयत्व द्रव्यत्व गुण, प्रदेशवत्व गुण सार ॥ ३८ ॥

चेतनत्व अचेतनत्वगुण ।

चेतनत्व गुण सहित सव, जीव द्रव्य पहचान ।
और जु पांचौं द्रव्य मैं, अचेतनत्वगुण मान ॥ ३९ ॥

मूर्त्तत्व अमूर्त्तत्व ।

मूर्तत्वगुण सहित सव, लखिये पुद्गलरूप ।
अवर जु पाचौं द्रव्य हैं, अमूर्तत्व गुण भूप ॥ ४० ॥
गतिहेतुत्व सु धर्मगुण, स्थिति हेतुत्व अधर्म ।
है वर्त्तनहेतुत्व गुण, कालद्रव्यमैं पर्म ॥ ४१ ॥
अवगाहनहेतुत्व गुण, मुख्य सु नभ अवधार ।
तथा सर्व ही द्रव्यमैं, अवगाहन गुण सार ॥ ४२ ॥

गुणही तैं उपकार है, गुणतैं द्रव्य विधान ।
कोउ सु गुण सामान्य कोउ, है विशेष परधान ॥ ४३ ॥

व्यंजनार्थपरजाय ।

पुद्गल पाषाणादि अरु, सुर नर जीव बताय ।
चिरस्थायि अरु थूल इति, है व्यंजन परजाय ॥ ४४ ॥
जीव रु पुद्गल द्रव्यकै, है व्यंजन परजाय ।
अवर अर्थपर्याययुत, छहौ द्रव्य ठहराय ॥ ४५ ॥
अगुरुलघू गुण परिणमन, सूक्ष्मक्षण स्थिति थाय ।
इति सु अर्थ परजाय जुत, सरवदरव ठहराय ॥ ४६ ॥

द्रव्यमें अनेकभेद व शक्ति ।

द्रव्य क्षेत्र अरु काल पुन, भाव भेद ए च्यार ।
इत्यादिक सबवस्तुमैं, भेद विविध विस्तार ॥ ४७ ॥
संज्ञा, संख्या भेद बहु, भेद सु लक्षणसार ।
तथा प्रयोजन आदितैं, भेद विविध विस्तार ॥ ४८ ॥
परभावनको नास्तिपन, अस्तिपनो निजभाव ।
इति निर्णय सब वस्तुमैं, निराबाध दरसाव ॥ ४९ ॥
है अनादि सब वस्तुमैं, निजनिज सहज स्वभाव ।
नहिं कछु तर्क स्वभावमैं, इति निर्बाध सु न्याव ॥ ५० ॥
अस्ति रु नास्ति स्वभाव अरु, नित्यानित्य स्वभाव ।
एकानेकसुभाव जुत, वस्तु ठीक ठहराव ॥ ५१ ॥
राजै परमस्वभाव तथा, है उपचरित स्वभाव ।
भेदाभेद स्वभावजुत, वस्तुस्वरूप लखाव ॥ ५२ ॥

गुण और स्वभावमें विशेषता ।

गुण जु गुणी ही मैं रहै, इह सुनियम लखि संत ।
गुणी और गुण दुहुनमैं, है स्वभाव विरतंत ॥ ५३ ॥

गुण सु द्रव्यहीमैं रहै, इह सुनियम लखि संत ।
गुण अरु पर्जय दुहुनमैं, है स्वभाव विरतंत ॥ ५४ ॥

वस्तु अनेकांत स्वरूप है ।

नित्य अनित्यादिक विविध, धर्म रहै इक ठाहिं ।
निज सु प्रयोजन साध हीं, परको वाधहि नाहिं ॥ ५५॥

कोऊ धर्मको गौणधरि, धरै कोउ धर्मप्रधान ।
यथा उचित अस्थल सुविधि, कहे कथन बुधवान ॥५६॥

अनेकांतमय वस्तुको, स्यादवाद वल साधि ।
जा प्रसाद सवविधि मिटै, भ्रम अज्ञान उपाधि ॥५७॥

पिता अपेक्षा पुत्र पुन, पुत्र अपेक्षा तात ।
एकहि पुरुष अनेकविधि, है सु भ्रातका भ्रात ॥ ५८ ॥

है सुगंध गुण कस्तुरी, मुख्य जु यह व्यवहार ।
पै सपरस रस वर्ण हू, तहाँ अवश्य विचार ॥ ५९ ॥

अनेकांत है वस्तु सव, यह सु ठीकता ठान ।
त्योंही जीव सु वस्तुको, अनेकांत पहचान ॥ ६० ॥

दवि रह्यो काल अनादितैं, आतमशक्ति अनंत ।
करम भरम वश जगतजन, लखै न निजविरतंत ॥ ६१ ॥

अहंवुद्धि निज जीव इति, संवेदन संज्ञान ।
सुखदुख जगत विचित्रलखि, कर्मोदय पहिचान ॥ ६२ ॥

समयप्रवद्ध ।

वहुविध योगकषायवश, गहै करम सर्वंग ।
तप्त लोहको पिंडज्यों, सोखै जल सर्वंग ॥ ६३ ॥

चारप्रकार वंधका वर्णन ।

प्रकृति स्वभाव जु कर्मको, स्थिति रहै संवंध ।
विपाक अनुभव प्रदेश वहु, पुदगलखंध सु वंध ॥ ६४ ॥
होहै जोगनिमित्ततैं, वंध जु प्रकृति प्रदेश ।
वंधे कषाय निमित्ततैं, थिति अनुभागविसेस ॥ ६५ ॥
सहज एकही ग्रास ज्यौं, सातधात होजाय ।
आवै पुद्गल समय प्रति, सात कर्म ठहराय ॥ ६६ ॥
आयुवंध अवसरलखो, जिनवानीकै पाठ ।
तहां सु समयप्रवद्धका, सहज होय वंट[1] आठ ॥ ६७ ॥

विस्रसोपचय ।

हैं सव आत्मप्रदेशपै, पुदगलद्रव्य अनंत ।
कर्म होयवे योग्य जो, विस्रसोपचय संत ॥ ६८ ॥
नये पुरातनकर्ममिलि, ज्यो विचित्रगति होत ।
सो सव यंत्रत्रिकोणमैं, गोमटसार उद्योत ॥ ६९ ॥
समय समय संचै नयो, पहिलो खर्च विचार ।
कार्माण पुदगलनिको, है भारी भंडार ॥ ७० ॥

---

१ विभाग.

द्रव्यकर्म जु अनादितैं, है संबंध मलीन ।
तातैं भाव करम पुनः, पुनः जु बंध नवीन ॥ ७१ ॥
वृक्षवीजवत जानिये, इह जु अनादि प्रवाह ।
मोहद्रोह वश जगतजन, कहूं न पावै थाह ॥ ७२ ॥
ध्यानअगनि प्रज्वलितकर, मोहबीज अध दाह ।
फिर न उगै संसार तरु, इहविधि लगै जु थाह ॥७३॥
जैसी मनवचकायकी, क्रिया समयप्रति जोय ।
तैसौ पुण्य रु पापमय, समयप्रबद्ध जु होय ॥ ७४ ॥
करुणादिक शुभयोगतैं, पुण्यास्रव परमान ।
अशुभयोग हिंसादिवहु, पापास्रव दुखखान ॥ ७५ ॥
करै करावै अन्यको, अनुमोदै जो कोय ।
मनवचतन सु त्रिकालमैं, पापपुण्य ज्यौं होय ॥ ७६ ॥
पुण्यबंधतैं जगतसुख, पापबंध दुखमूल ।
शुद्धस्वभाव विचारतैं, दुविध जीवकी भूल ॥ ७७ ॥
पाप अशुभ उपयोगतैं, शुभोपयोग सु पुन्य ।
शुध उपयोग सु परमपद, दुविधबंधसौं शून्य ॥ ७८ ॥
त्याग अशुभ उपयोगको, शुभोपयोग अवधार ।
होय शुद्ध उपयोगमय, तरै भवार्णव पार ॥ ७९ ॥
पुण्यपापकी लटकिमैं, उलझरहे जगजंत ।
सुलझै सम्यक ज्ञानतैं, ज्यौं बूझै विरतंत ॥ ८० ॥

---

१ इसदोहेका अर्थ विस्तार एकसय सयतालीस १४७ भंगभेद निपजावैहै ।

कर्मघातियाकी प्रकृति, सवही पापसरूप ।
है अघातिया प्रकृति कोउ, पुण्य कोऊ अघरूप ॥ ८१ ॥
पुण्यप्रकृति उद्योतमैं, मूरख रहे लुभाय ।
मकरचांदनी ज्योतिमैं, ज्यौं नर धोखा खाय ॥ ८२ ॥
मकरचांदनीसम दिपै, पुण्यप्रकृति सुप्रकाश ।
मूल नहीं सुख मूल 'जग' है ज्यौं सुख आभास ॥८३॥

पापपुण्यकी समानता ।

दुहुंको फल संसार है, दुहुं पुद्गलकी रेख ।
दुहुंकी दशा अनित्य है, पापपुन्य अविसेख ॥ ८४ ॥

पापपुण्यकी असमानता ।

वहु कुरूप दुर्गति दशा, है यह सुगत सुरेख ।
सुखदुख कारन भेदतैं, पापपुण्य सु विसेख ॥ ८५ ॥
सहकारी शिव राहमैं, पुण्य कथंचितरूप ।
मार्गविरोधी पाप है, यह सु विशेष अनूप॥ ८६ ॥
सहकारी शिवराहमैं, पुण्य प्रकाशस्वरूप ।
मार्गविरोधी पाप है, मोहमहातम कूप ॥ ८७ ॥

पुण्यकी विशेषता ।

निरावद्य लछमी मिलै, श्रेष्ठपुण्यके जोग ।
नहिं बाधै शिवराहकौं, साधै सुख संजोग ॥ ८८ ॥
बाधै शिवपुर राहकौं, साधै विषयविकार ।
हीनपुण्यके निमित्तैं अंतवधै[1] संसार ॥ ८९ ॥

---

१ बढताहै ।

पुण्यप्रकृतिके भेद वहु, पाप जु वहुत प्रकार ।
तस उदयादिक भेदतैं, गति विचित्र संसार ॥ ९० ॥
स्वल्पपुण्य वेडी थकी, गिरहि पड़ै गतिनीच ।
जैसैं ऊंचौ चढ चलै, अंत जु नलजल कीच ॥ ९१ ॥
जहां सुदिढ उपयोग धर, धर्मपक्ष सरवंग ।
तहां प्रचुर अनुभागयुत, पुण्यप्रकृति सु अभंग ॥ ९२ ॥
ज्यौं सुव्रत सम्यक सहित, धरे धरम शुचि अंग ।
श्रेष्ठ पुण्यका तासकै, है ज्यौं सहज प्रसंग ॥ ९३ ॥
पाप पुण्य कछु नहिं चहै, गहै सु संवर भाव ।
पूर्वकर्म वहु निर्जरा, करिये सुतप प्रभाव ॥ ९४ ॥

चौपाई ।

क्षेत्रस्वरूपी लोकाकाश । तहां सु पांचौं द्रव्य निवास ।
एक छेत्रमैं छहौं जु रहै । परस्वभावको कोउ नहिं गहै ॥९५॥
निजसत्ताकी हानि न होय । परसत्ताको गहै न कोय ।
निज निज गुणपरजयमय सदा । निश्चय सर्वदरव है जुदा ९६

वस्तु निर्दोषता ।

वस्तु जु आपुसमैं मिलजाय । तौ संकर दूषन लगि जाय ।
कोउ काहुतैं मिले न कदा । निश्चय सरवदरव है जुदा ॥९७॥

व्यतिकर दूषणका परिहार ।

निज स्वभावकौं त्यागै कोय । तौ तहँ व्यतिकर दूषन होय ।
कोउ अपनो स्वभाव नहिं तजै । निजस्वभावमय सवही सजै ९८

अभावदूषणका परिहार ।

जो सरवथा वस्तु नशिजाय । तौ सब जगत शून्य होजाय ।
कोऊ वस्तुका नहीं अभाव । है इह सरव दरब सद्भाव ॥ ९९ ॥

अनवस्था दूषणका परिहार ।

जो जगका कर्त्ता कोउ होय । फिर करताका कर्त्ता कोय ।
अनवस्था दूषण तहँ जान । स्वयंसिद्ध सब जगत प्रमान १००

अवस्थितताका वर्णन ।

जो रूपी पदार्थ 'जग' माहिं । ते जु अरूपी होवैं नाहिं ।
नहीं अरूपी रूपी होय । सर्वहि द्रव्य अवस्थित जोय ॥ १०१ ॥
जौन द्रव्यके जेते प्रदेश । हैं प्रमाण आगम उपदेश ।
नहीं घटै नहिं बधै जु कदा । ज्यौंका त्यौंहि अवस्थित सदा॥ १०२
हैं जेते जो द्रव्य प्रमान । तिनका कभू होय नहिं हान ।
नहीं घटै नहिं बढै जु कोय । सर्वहि द्रव्य अवस्थित होय॥ १०३॥
द्रव्यार्थिक नयतैं हैं नित्य । परजय नयतैं कहे अनित्य ।
स्यादवादतैं मिटै विरोध । होय सहज अविरोध सुबोध ॥ १०४ ॥

इति श्रीधर्मरत्नोद्योतग्रंथमें प्रमेयनामा तृतीयाधिकार समाप्त हुवा ॥ ३ ॥

अथ भेदविज्ञानाधिकारः प्रारभ्यते ।

दोहा ।

श्रीगुरुचरन पयोजवर, नमौं जोर जुगपान ।
जा प्रसाद प्रगटै सहज, स्वपरभेद विज्ञान ॥ १ ॥
पुद्गलतैं लटपट भयो, अटपट पर्यौ अनाद ।
अव चेतन खटपट करै, झटपट हरै विषाद ॥ २ ॥
पुग्गलीक पुतली विषैं, पूरित है सरवंग ।
गुन लच्छन न्यारो धरै, वृथा कहावै संग ॥ ३ ॥
पुदगलके दो गंध रस, पंच वरन वसु फास ।
इन सवतैं आतम जुदा, सदा सुवोध प्रकाश ॥ ४ ॥
आत्म असंख्य प्रदेशमय, है इकसम तिहुँकाल ।
पुद्गलको पूरन गलन, हानिवृद्धिकी चाल ॥ ५ ॥
चरमदृष्टितैं प्रगट है, पुदगलको वहु रूप ।
अंतर ज्ञान सुदृष्टितैं, प्रगट परम चिद्रूप ॥ ६ ॥
जड़ चेतन दो वस्तु मिलि, असमान जाति परजाय ।
रेसम और कपास का, ज्यौं इक वस्त्र वनाय ॥ ७ ॥
दुहुंदल संग अनादिको, वसै दुहूं इक थान ।
तथापि न्यारो होत ज्यौं, कंचन अरु पाखान ॥ ८ ॥
पर पुदगलके निमित्ततैं, है अशुद्धतारूप ।
करम धरम सव त्यागतैं, परम शुद्ध चिद्रूप ॥ ९ ॥

द्रव्यकर्म नोकर्म अरु, भावकर्म करि दूर ।
शुद्ध सु दर्शन ज्ञान निज, आतम शक्ति प्रपूर ॥ १० ॥
है नोकर्म सु देह यह, द्रव्य कर्म कार्मान ।
भावकर्म रागादितैं, भिन्न सु निज पहचान ॥ ११ ॥

कुंडलिया ।

अप्पा परको परखिये, यहै सार इक वस्तु ।
चिंतामन ज्यौं कर चढ्यौ, तो कर चढ्यौ समस्त ॥
तो कर चढ्यौ समस्त, हस्त काकौं फैलावै ।
परम धरम चिद्रूप आपकौं आपुहि ध्यावै ॥
चंचलता तजि थिरीभाव निज जाप अजप्पा ॥
सो साधक शिव लहै सहज जो ध्यावै अप्पा ॥ १२ ॥
अपना आतमद्रव्य जो, देखइ जानइ सव्व ।
होयगया होवै जु कछु, होनहार है अव्व ॥
होनहार है अव्व सव्व सो जुगपत जानै ।
मोहभाव विन राग दोष काहेको ठानै ॥
परनिमित्त आवरण मिटै जव ह्वैरै ढपना ।
देखै जानै सरव दरव जो आतम अपना ॥ १३ ॥

दोहा ।

मोहकरमके निमित तैं, हैं रागादि विभाव ।
शुद्ध सु दर्शन ज्ञान गुण, आतम सहज सुभाव ॥ १४ ॥
हरित पीत परडंक तैं, नग वहु रंग तरंग ।
मिटै डंक नग सहज ज्यौं, उज्जल जोति अभंग ॥ १५ ॥

कोउ कारन करि उष्ण जल, निश्चय शीतलभाव ।
राग द्वेष परनिमित्ततैं, सहज विराग स्वभाव ॥ १६ ॥
केइ गिरितैं झरना झरै, उष्ण सलिल परतच्छ ।
तद्यपि सहज स्वभाव जल, कहिये शीतल स्वच्छ ॥ १७ ॥
अग्निशिखा ऊरधगमन, सहज अधोगति वार[1] ।
पवन सु तिर्यग गमन इति, वस्तुस्वभाव विचार ॥ १८ ॥
झामें[2] झरै भाँवर भरै, जल जैसौ जहँ भूम ।
परनिमित्ततैं आतमा, घूमै घूमरि घूम ॥ १९ ॥
आतम परिणामीदरव, जहँ जैसो सु निमित्त ।
तहँ तैसी विधि परिणमै, इति सम्हाल निजचित्त ॥ २०॥
रागादिक वश जीवकै, कर्मबंध अधिकाय ।
जैसैं चिकने गातपै, धूलिपुंज जमिजाय ॥ २१ ॥
ज्यौं कुधातुके फेंटतैं[3], कनकजोति छविछीन ।
कार्माण पुद्गल मिले, आतमगुण भयो हीन ॥ २२ ॥
दर्शनमोह प्रकृती प्रबल, लगी अविद्यामूल ।
अपने शुद्ध सुभावकी, है अनादितैं भूल ॥ २३ ॥
अंतर मोहप्रकृति मिल्यौ, वाहिज संग कुमित्र ।
अहो कहो यह आतमा, कैसै होय पवित्र ॥ २४ ॥
चखै सु रस अध्यात्ममय, लखै जु निजगुणसार ।
उरझौ काल अनादि को, सुरझै सहज प्रकार ॥ २५ ॥

---

१ पानी । २ सोत । ३ मेलतैं ।

करै नहीं परवस्तुमैं, अहंकार ममकार ।
नाखै सब परवस्तुको, राखै निजगुणसार ॥ २६ ॥
निज उमंग वर गंगकी, चढै तरंग अभंग ।
कढै प्रसंग सु मोहमल, बढै सहज शुचिरंग ॥ २७ ॥
स्वपर वस्तु सब ज्ञानमैं, आपु सहज दरशाय ।
निज स्वभावमैं रमि रहे, टरै न टार्यौ जाय ॥ २८ ॥
ज्ञानमयी दरशन मयी, नयी नहीं कछु रीत ।
हूं अनादि निजगुणमयी, नयी भई सु प्रतीत ॥ २९ ॥

त्रिदोषरहित जीवका लक्षण ।

अतीव्याप्त अव्याप्त नहिं, नहीं असंभवदोष ।
दर्शन ज्ञान सु जीवका, है लक्षण निर्दोष ॥ ३० ॥

जीवकी सार्थसंज्ञा ।

धरै प्राण जीवै सदा, जीव कहावै सोय ।
निश्चय प्रान सु चेतना, व्यवहारे दश होय ॥ ३१ ॥
इंद्रिय पंच सु मन वचन, तनबल तीन सु जान ।
आयु रु श्वासोश्वास इति, व्यवहारे दश प्रान ॥ ३२ ॥

सामान्यतया च्यार प्रान ।

इंद्रिय श्वासोश्वास बल, आयु सु प्रान सदीव ।
धरै सु च्यारौं प्रान नित, यह संसारी जीव ॥ ३३ ॥

मूर्त्तामूर्त्त ।

नाम करम संजोगतैं, मूरतीक व्यवहार ।
है अमूर्त निश्चय सु विधि, स्यादवाद अविकार ॥ ३४ ॥

कर्त्ता अकर्त्ता ।

विविध शुभाशुभ कर्मका, कर्त्ता है व्यवहार ।
वहु निजगुणपरजायका, कर्त्ता निश्चय धार ॥ ३५ ॥

भोक्ता ।

सुखदुख पुदगलकर्म फल, भोगै ज्यौं व्यवहार ।
निज चैतन्यस्वभावका, भोक्ता निश्चय धार ॥ ३६ ॥

वक्ता अवक्ता ।

सत्य असत्य सु वचनका, वक्ता है व्यवहार ।
नहिं वक्ता निश्चय थकी, स्याद वाद अविकार ॥ ३७ ॥
पुदगलद्रव्य विकार है, शव्द अनेकप्रकार ।
निश्चयनय शुद्धातमा, करै न शव्द उचार ॥ ३८ ॥
तज्यौ न जीव अनादितैं, तैजस अरु कार्मान ।
वार वार ताकौं गहै, रहै सदा हैरान ॥ ३९ ॥
कहुं संकोचदशा धरै, कहूं धरै विसतार ।
कार्मान आधारवश, जीव अनेकाकार ॥ ४० ॥
छोटो देह निगोद लौं, वडो मच्छलौं अंत ।
विविध देहधर जीव जग, नाचइ नाच अनंत ॥ ४१ ॥
सब ही जीव समान हैं, घाटवाढ नहिं कोय ।
सकुचै फैलै देह सम, तदपि लोकसम होय ॥ ४२ ॥

केवलसमुद्धातवर्णन ।

महामेरुके मूलतल, मध्य जु आठप्रदेस ।
सोई लोकाकाशका, है अतिमध्य विशेष ॥ ४३ ॥

जीवप्रदेश असंख्यमैं, मध्य जु आठप्रदेश ।
हैं अकंप निश्चल लखो, जिनवानी उपदेश ॥ ४४ ॥
आठ प्रदेश सु जीवके, महामेरुतल ठीक ।
लोकपूर्ण प्रभुकेवली, समुद्घात[1] तहकीक ॥ ४५ ॥

चौपाई ।

रोगादिक बहु पीडा थाय । जहाँ तीव्रवेदना लहाय ।
तहाँ जु निकलैं आत्मप्रदेश । सु है वेदनानाम कलेश ॥ ४६ ॥
अधिकतीव्रक्रोधादि उपाय । उपजै जहँ अति कठिन कषाय ।
तहाँ जु निकलैं आत्मप्रदेश । कषाय समुद्घात जु विसेस ॥ ४७ ॥
तपबल मुनि विक्रिया लहाय । वा सुर बहुविक्रिया कराय ।
जहँ जैसो विक्रिया विशेष । त्यौं ही फैलै आत्मप्रदेश ॥ ४८ ॥
कहूं मरनके पहिले अंत । फैलैं जनमछेत्र परजंत ।
निकलैं केतिक आत्मप्रदेश । मरणांतिक समुद्घात विशेष ४९
शुभहित अथवा अशुभप्रकार । प्रगटै जहां तेज विस्तार ।
तहां विस्तरइ आत्मप्रदेश । तैजससमुद्घात सु विशेष ॥ ५० ॥
प्रमत्तगुणथानक मुनिराय । आहारक शरीर सुखदाय ।
तहाँ जु निकलै आत्मप्रदेश । आहारक समुद्घात विशेष ॥ ५१ ॥
केवलज्ञानी प्रभु सुखरूप । दंडकपाटादिक सु अनूप ।
तहां जु फैलै आत्मप्रदेश । केवलसमुदघात सु विशेष ॥ ५२ ॥

---

1 समुद्घात सातप्रकारका है, यथा—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, विक्रियासमुद्घात, मरणांतिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात, केवलसमुद्घात ।

आहारक मरणांतिक दोय । कोउ इकदिशकौं प्रापति होय ।
अवर जु पांच भेद हैं सोय । दशोंदिशाकौं प्राप्त जु होय५३

दोहा ।

मूलदेहकौं नहिं तजै, जीव कितेक प्रदेश ।
तैजस अरु कार्माण जुत, निकलै बाहिज देश ॥ ५४ ॥
बहुरि शीघ्रही सिमटिकैं, होय सु देहसमान ।
समुदघातको कथन इति, सामान्यतया जान ॥ ५५ ॥

साकार निराकारता ।

निजशरीर सापेक्षतैं, है सु जीव साकार ।
परापेक्षतैं है सही, निराकारता सार ॥ ५६ ॥
निजशरीर सापेक्षतैं, व्यवहारे साकार ।
शुद्ध सु निश्चयनयथकी, निराकार अविकार ॥ ५७ ॥

देहपरिमाण और सर्वगत ।

है स्वदेह परिमाण पैं, ज्ञान अनंत सुरीत ।
सर्वव्यापि प्रभु सर्वगत, स्यादवाद सु पुनीत ॥ ५८ ॥
दर्शन ज्ञान अनंत सुख, धरैं सु वीर्य अनंत ।
परमातमप्रभु विष्णु शिव, परमब्रह्म भगवंत ॥ ५९ ॥

ऊर्द्धगति स्वभाव ।

है निश्चय या जीवका, ऊरधगमन स्वभाव ।
जगतजीव दुःकर्मवश, धरै अनेक विभाग ॥ ६० ॥
विदिशा तजि सूधो चलै, छहों दिशाके माहिं ।
देह हेत यह आतमा, गमन करइ सक नाहिं ॥ ६१ ॥

इंद्रिय आदिक प्रानको, वियोग मरन सु जान ।
धरइ चेतना प्रान नित, जीव अमर पहचान ॥ ६२ ॥
नित्यअनित्यादिक सु विधि, अनेकांत हित ठान ।
स्यादवादमत जैनमैं, जीवतत्त्व पहचान ॥ ६३ ॥
कथन सु वीसप्ररूपना, पढहु सुनहु हितठान ।
जातैं सव संशय मिटै, प्रगटै सम्यक ज्ञान ॥ ६४ ॥
पंचभावमय जानिये, जीवतत्त्व व्याख्यान ।
जाप्रसाद प्रगटै सहज, स्वपरभेद विज्ञान ॥ ६५ ॥
देखइ ताकौं देखिये, जानइ ताकौं जान ।
स्वपर चिन्ह पहचानता, ताकौं तू पहचान ॥ ६६ ॥

अन्यमतीको उराहना व संवोधन ।

मगन रहै पर भावमैं, निशदिन संध्या भोर ।
अप्पापर परचे विना, वांधइ कर्मकठोर ॥ ६७ ॥
जिनमुद्रासुद्रित सवइ, नग्न अवतरइ आय ।
वृथा अन्यमत आपकौं, ठगै सु भेख वनाय ॥ ६८ ॥
आय नग्नही अवतरइ, नग्नाभ्यंतर ठौर ।
मतवालो ले भेखकौं, करइ औरका और ॥ ६९ ॥
यद्यपि वाहिज भेषतैं, मतवालो वहुरूप ।
तद्यपि अंतरदृष्टितैं, निश्चय नगन स्वरूप ॥ ७० ॥
सुमति मूल इक रहिगयौ, कुमति विविध चकचूर ।
पाँचौं रंगप्रसंगकौं, कियो दिगंवरि दूर ॥ ७१ ॥

नहीं शस्त्र वादित्र नहिं, नहिं श्रृंगार विकार ।
सहज स्वभावे सुखमयी, परमशांत छविसार ॥ ७२ ॥
आभूषणद्युति देखि नहिं, रीझै आपु अवार ।
नहिं परकौं जु रिझाइ वौ, करै सु क्यौं श्रृंगार ॥ ७३ ॥

अन्यमतीसों तर्क ।

जों त्रिकाल तिहूं लोककौं, देखइ प्रगट विख्यात ।
अंतर जामी पुरुप क्यौं, परतैं पूछे वात ॥ ७४ ॥
प्रथमाज्ञा निजभूल लखि, अन्य हुकुम करतार ।
अंतर जामी ईसको, यह कैसौ व्यवहार ॥ ७५ ॥

चौपाई १६ मात्रा ।

जो वक्ता सुज्ञानका हीना । क्रोध लोभ छल मानमलीना ।
तासु वचन किम होय प्रमानी । क्यौं तस शिष्यादिक सज्ञानी ७६
जहां मूलवक्तामैं दूषन । तहँ उत्तरमैं कौन सु भूपण ।
जहाँ स्थूलदोषमय वानी । तहां सूक्ष्मकी कौन कहांनी ॥७७॥

दोहा ।

जो आपुहि इच्छा धरइ, आकुलता कइ भाँत ।
सो परका दुख क्यौं हरै, यह सु न्यायकी वात ॥ ७८ ॥
कोऊ जनमकी विधिधरै, कोउ दिन मरन उमाह ।
जन्म मरनदोऊं तजै सो सांचौ उतसाह ॥ ७९ ॥
नीच जु चाहै उच्चपद, ऊंच चहै नहिं नीच ।
न्हाय धोय शुचिरुचि सुधी, सु क्यौं लगावै कीच ॥८०॥

घटपटादिके कथनमैं, वाहिज दोऊ समान ।
तद्यपि अंतर भेद वहु, ज्ञानी अरु अज्ञान ॥ ८१ ॥
कारन तथा स्वरूपको, कहै विपर्जयरूप ।
भेदाभेद न समुझिसकै, अज्ञानी अघ कूप ॥ ८२ ॥
आसनमुद्रा आदिले, विविध सुयोगाभ्यास ।
तत्त्वज्ञान जुत सव सफल, या विनु सवहि उदास॥८३॥
तत्त्वकथा निज नहिं रुचै, जातैं स्वहित उपकार ।
विकथा वहु लौकिक कथा, रुचै अनेक प्रकार ॥ ८४ ॥
धातपरख विन वाउलौ, रज शोधे चिरकाल ।
तत्त्वज्ञानविन तापसी, कैसैं होइ निहाल ॥ ८५ ॥
जीवाजीव सु भेदको, नहिं जानै अज्ञान ।
वंध मोक्ष समुझे विना, वृथा रहै हैरान ॥ ८६ ॥
इष्ट दिशातैं विमुख जो, दौरइ विना सहूर ।
ताही थानक पहुंचिवौ, अधिक अधिक ह्वै दूर ॥ ८७ ॥

अन्यमतीतैं उराहना ।

सूक्ष्म तथा जे अंतरित, तथा दूर वहु वस्तु ।
सो सव श्रीसर्वज्ञ विन, को कहिसकै समस्त ॥ ८८ ॥
गुण अरु दोष विचारिवौ, तुलापला परिणाम ।
सव जनतैं यह नहिं वनै, वडे जननको काम ॥ ८९ ॥
लगि रह्यौ काल अनादितैं, अग्रहीत मिथ्यात ।
वहुरि कुशास्त्र प्रसंगतैं, ग्रहितरूप अवदात ॥ ९० ॥

पोषन हेत अतत्त्वके, कलिमैं धूर्त्त अनेक ।
रच्यौ विविध कल्पितकथा, कल्पित क्रिया विवेक ॥९१॥

अर्थ अपेक्षा ठीक नहिं, अभिप्राय नहिं ठीक ।
नहिं अधिगमकारन तहाँ, है जहँ वचन अलीक ॥ ९२ ॥

कहूं विपर्जय ज्ञान उर, कहूं अनध्यवसाय ।
कहूं जु संशयरूप रहि, करै न सत्य उपाय ॥ ९३ ॥

अज्ञानी मिथ्यात्व वसि, अभिप्राय विपरीत ।
ज्ञानी सु नय प्रमाण उर, धरइ सु अधिगमरीत ॥ ९४ ॥

तत्त्वज्ञानमाहात्म्य ।

हटै कठिन संसार दुख, ज्यौं विघटै मिथ्यात ।
कटे वृक्षका कै दिना, हरे डाल अरु पात ॥ ९५ ॥

गयो अनँत संसारको, कारन मोह अनंत ।
कट्यौ वृक्ष सूकै अवशि, तरइ भवोदधि संत ॥ ९६ ॥

कर्मजनित निजदोषकौ, करइ जु पश्चात्ताप ।
औषधवत सु उचित विषय, सम्यक्ती निःपाप ॥ ९७ ॥

निज सु प्रयोजन साधही, परकौं बाधहि नाहिं ।
इति निर्दोष प्रवृति धरै, सज्ञानी 'जग' माहिं ॥ ९८ ॥

रहै परिग्रहमैं तदपि, भेदविज्ञान अभंग ।
धरइ निरंतर भावना, सुगुण अध्यात्म तरंग ॥ ९९ ॥

ज्ञान विराग सु शक्तिजुत, विविध सु क्रिया करंत ।
लिपैं न कर्मकलंकतैं, सदयहृदय जे संत ॥ १०० ॥

रागादिक विन संतको, यौं आस्त्रव खिर जाय ।
शूने घरको पाहुनौ, ज्यौं आवइ त्यौं जाय ॥ १०१ ॥
मोह द्रोह विन वेदनी, ज्यौं विनविषको नाग ।
सुखदुख वाह्य निमित्त वल, सवल सु ज्ञान विराग ॥१०२॥
पूर्वकर्म जैसो उदय, ताहीके अनुसार ।
सुखदुखमय वाहिज निमित, इति विवेक अवधार ॥ १०३॥
सज्जन जन जहँ दुख सहै, तहँ ऐसो सुविचार ।
पूर्व कर्मका ऋणहि ज्यौं, आज होय निर्वार ॥ १०४ ॥
जाहि अल्प आहार है, अल्पेंद्रिय व्यापार ।
अल्प परिग्रह भार है, ताहि अल्प संसार ॥ १०५ ॥
अंतर तत्त्व सुज्ञान उर, वाहिज भली प्रवृत्त ।
सज्ञानी संसार तैं, क्यौं न होय निरवृत्त ॥ १०६ ॥
वीतराग सर्वज्ञकी, आज्ञा नवका धार ।
सम्यकदृष्टी सहजही, होय भवार्णव पार ॥ १०७ ॥

चौपाई ।

है पट द्रव्यात्मक यह लोक । यामैं वृथा हरख अरु शोक ।
करइ करमवश भरम सदीव । कहीं न सुख पावै यह जीव १०८
भ्रमइ अनादि पंचसंसार । मोहकर्म वश लहै न पार ।
राजू तीनशतक तेताल । भटकि भटकिके भयो वेहाल ॥ १०९
जो कहुं लब्धि मिलइ हित हेत । तवइ सु आतम होय सचेत ।
करइ अनादि मोहमद दूर । धरइ सु भेदज्ञान परिपूर ॥११०॥

पुदगल अरु परजीव अनेक । तिनतें मैं न्यारा हूं एक ।
दोय जीव कहुं एक न होय । एक जीव पुन होय न दोय ॥ १११ ॥

हूं अखंड इक जीव सु वस्त । लोकप्रमान प्रदेश समस्त ।
सूक्ष्मकर्मवर्गना अनंत । मिलि रह्यो मेरे संग अत्यंत ॥ ११२ ॥

ता वश औदारिक तन पाय । है असमान जाति परजाय ।
लहौं आज इति स्वपर विवेक । पर तजि गहौं निजातम टेक ११३

मनवचतन पुदगल जडरूप । निश्चय ज्ञानमयी चिद्रूप ।
निजसत्ता अविनाशी जान । निजमैं मगन रहे बुधवान ॥ ११४ ॥

मैं हूं ज्ञाता दृष्टा सही । करता हरता परका नहीं ।
नहिं राचौं नहिं विरचौं कदा । परतैं निरापेक्ष हूं सदा ॥ ११५

जडचेतन कहुं होय न एक । दुहुंकी जुदी जुदी है टेक ।
व्यवहारे दुहुंको इकभेस । जुदा सु लक्षण जुदा प्रदेश ॥ ११६ ॥

ज्यों तंदुलको छिलका धान । त्यौं सु जीवको तन कार्मान ।
ज्यों तुप तजकैं अक्षत होय । फेरि कदाचि न उपजै सोय ॥ ११७

कार्मानतन जव परिहरइ । फेरि सु जीव जन्म नहिं धरइ ।
जडचेतनको अमिल मिलाप । कवधौं मिटै जु यह संताप ११८

चौदह मारगनाके द्वार । जीवतत्त्वका करौ विचार ।
लखौ भेद चउदह गुणथान । होय सु जीवतत्त्वका ज्ञान ॥ ११९ ॥

जीव अनादि कर्मवश पर्यौ । कवहु न निज सुभाव आचर्यौ ।
करमभरमवश निजगुणहीन । भयौ सु आतमधर्म मलीन ॥ १२० ॥

अष्टकर्मके नाशतैं आठगुणोंका प्रकाश।

ज्ञानावरण करम वस जीव। अज्ञानी है रह्यो सदीव।
ज्ञानावरण करम जब जाय। ज्ञानअनंत शक्ति प्रगटाय॥१२१॥
कर्म दर्शनावरन वसाय। जीव सु दर्शनहीन रहाय।
होय दर्शनावरणी दूर। गुण अनंतदर्शन परिपूर॥ १२२॥
कर्म वेदनी सुखदुखदेत। मोही जनको यह दुखहेत।
कर्मवेदनी जब परिहरै। निजगुण अव्यावाध सु धरै॥१२३॥
मोह उदय वशतैं मिथ्यात। रागादिक बहुविधि उत्पात।
मोह कर्मको करै जु त्याग। होय शुद्ध सम्यक्त विराग॥१२४॥
आयुकर्मके वस यह जीव। चहुं गतिमैं थिति धरै सदीव।
चहुंगति आयुकर्म करि दूर। प्रगटै अवगाहनगुण भूर॥१२५॥
गति जात्यादिक स्वांग अनंत। नामकरमवश मूरतवंत।
नामप्रकृति[1] तजिके चिद्रूप। गहै सु निज गुण सूक्ष्मस्वरूप॥१२६
नीचऊंच कुलभेद अनेक। गोत्रकर्मवश है यह टेक।
गोत्रकर्मगिरि करि चकचूर। अगुरुलघू निजगुण परिपूर॥१२७
अंतरायवश कछु न वसाय। 'जग' मैं निवल भयौ विललाय।
विघ्नकर्म[2] जब होवै अंत। प्रगटै आतमवीर्य अनंत॥ १२८॥

अष्टकर्मोंके क्षय होनेका क्रम।

अष्टकरम बंधन यह जान। तामैं मोह महाबलवान।
पहिले मोहकरम जु नशाय। अवर जु तीनघातिया जाय १२९

---

१ नामकर्म। २ अंतरायकर्म।

च्यारौं घातिकरम करि नाश । होय सु केवलज्ञान प्रकाश ।
बहुरि अघात च्यार चकचूर । मोक्षस्वरूप सुगुणपरिपूर ॥१३०॥
इहविधि आठ करम करि अंत । वसुगुण आदिक सुगुण अनंत ।
सहजहि ऊरधगमन स्वभाव। लोकशिखर निश्चल ठहराव॥१३१॥
पंद्रहसय तनभाग महान । जघन भाग नवलाख सुजान ।
मध्य अनेक अवगाहनस्वामि । लोकशिखर श्रीसिद्ध नमामि १३२

इति श्रीधर्मरत्नोद्योतग्रंथमें भेदविज्ञान नामा चतुर्थ अधिकार समाप्त हुवा॥४॥

अथ उद्यमोपदेशाधिकारः प्रारभ्यते।

दोहा।

नमौं जोर कर कंजपद, श्रीगुरु विगत कलेस।
जाप्रसाद प्रगटै परम, उद्यमहित उपदेश ॥ १ ॥
मिल्यौ सु पूरव पुण्यतैं, पंचेंद्रिय सुख साज।
तामैं रह्यो लुभाय तू, आगैं कहा इलाज ॥ २ ॥
होय लुब्ध बहुविषय रस, स्वादत वारंवार।
जैसैं जोंक अज्ञानतैं, गहै रुधिर पय छार ॥ ३ ॥
भ्रमत भ्रमत भवचक्रमैं, मिल्यौ मनुष परजाय।
या अवसर चेतै नहीं सु, फिर पीछे पछताय ॥ ४ ॥
विना धरम पुरुषार्थके, पशुवत नर परजाय।
निर उद्यम वृक्षादि ज्यौं, वृथा सु काल गमाय ॥ ५ ॥
वर्त्तमानमैं वस[1] सरे, करै सु धर्म उपाय।
आगैं अहो न जानिये, कब कैसी हो जाय ॥ ६ ॥
कै दिन कै छिन कै घरी, पूर्वपुण्यकी आस।
जो नवीन संचै नहीं, अंत कुगतिमैं वास ॥ ७ ॥
पुण्यस्थिति घट जाय जब, पापउदय सु अवार।
सोई जीव दुख भोगवै, उथल[2] पुथल संसार ॥ ८ ॥

---

१ जहांतक वस चलै। २ उलट पुलट।

चौइंद्रिय लौं जीव सब, हैं मनरहित निदान ।
पंचेंद्रिय कोउ मनरहित, कोउ मनसहित सुजान ॥ ९ ॥
कमल फूल वसु दल विमल, पुद्गल सूक्ष्म स्वरूप ।
हृदयस्थान सु द्रव्यमन, है [1]नोइंद्रियरूप ॥ १० ॥
स्पर्शन रसन सु घ्रान अरु, चक्षु श्रोत्र ए पांच ।
विषय परस रस गंध अरु, रूप शब्द सुनि सांच ॥११॥
अपने अपने विषयको, लहै जु पंचेंद्रीय ।
गहै नहीं पर विषय कोउ, इति शुभ न्याय कहीय ॥१२॥
नेत्र और मन दूर तैं, विषय गहै अनिवार ।
और च्यार इंद्रिय विषय, भिड़कर गहै जु सार ॥ १३ ॥
भोगत इंद्रिय विषयको, कोउ नहीं कहूं अघाय ।
घृत आहुति पावक सु ज्यौं, त्रिसना अति अधिकाय ॥ १४ ॥
नारकि नित पीडत रहै, विषयासक्त सु देव ।
अविवेकी तिरजंच बहु, नर गृहधंदा भेव ॥ १५ ॥
जब जैसो परजय तहां, तैसौ मोहविलास ।
सिंह सूर अहि क्रूर भव, पंछी चलै अकाश ॥ १६ ॥
हो रह्यो काल अनादितैं, पर्जय बुद्धी आप ।
द्रव्यदृष्टि कहुं ना जगी, लगी मोहकी छाप ॥ १७ ॥
जब जैसो परजय तहां, ताहीके अनुसार ।
बाह्याभ्यंतर निमित्त लहि, प्रगटइ मोहविकार ॥ १८ ॥

---

१ किंचित् इंद्रियरूप जिसको अनिंद्रियभी कहतेहैं ।

चहुं गति चौरासीय लख, जोनिमाहिं तिहुं काल ।
जनम मरन करतौ फिरै, तीनशतक तेताल ॥ १९ ॥
तीनलोक तिहुं कालमैं, जनम्यो मर्‍यौ अनंत ।
वहु मिथ्यात्व कषायवस, भयौ न भवदुख अंत ॥ २० ॥
शुभ शरीर कुल जातिका, गर्व कहा करै खींच ।
विन सुधर्म भवभ्रमनमैं, है नगीच गति नीच ॥ २१ ॥
विन सुधर्म शुभ कुल विखै, क्या सुधरै निज काम ।
पशुवत नरपरजाय इति, अशुचि हाड अरु चाम ॥ २२ ॥
निश्चय तत्त्व सुबोध तैं, है पवित्रता सार ।
नीच ऊंच चहुंगति भ्रमन, करै कष्ट संसार ॥ २३ ॥
भ्रमनमूल मिथ्यात है, मरनमूल यह देह ।
मोक्षमूल सम्यक्त है, वंध मूल अस्नेह[1] ॥ २४ ॥
काम क्रोध छल लोभमैं, सव संसारी दीन ।
जो याकौं त्यागै सोई, प्रभुसामर्थ्य प्रवीन ॥ २५ ॥
देव धरम निर्दोष उर, धरो सुप्रीत प्रतीत ।
युक्त्यागम वर न्यायतैं, गहि उत्तम कुलरीत ॥ २६ ॥

चार वर्ण ।

कायर जंतु अनाथकी, रक्षा हित चित धार ।
भुजवल परम समर्थता, क्षत्रियराज कुमार ॥ २७ ॥
दया धर्म लवलीनता, तजि मिथ्या अहंमेव[2] ।
ब्रह्मज्ञान निर्मलदशा, सो है ब्राह्मन देव ॥ २८ ॥

---

१ स्नेह अनुराग । २ अहंकार ।

राज छत्र छत्री सु बुध, सूद्र सु सेवाहेत।
लग्यौ वैश्य व्यापारमैं, हो बुधिचतुर सचेत ॥ २९ ॥
सतसंगति शैली मिले, मिलै सु शिवमग रीत।
शैली विन मैली भई, गति मति सुमन प्रतीत ॥ ३० ॥
उपादान शुभ शुभनिमित, है जहां समिल मिलान।
तहाँ सहजही शुभमयी, सत मति गति कल्यान ॥ ३१ ॥
होत शुभाशुभ भाव ज्यौं, संगतिके हि विशेख।
गंधी और लुहारकी, वैठि दुकान जु देख ॥ ३२ ॥
आयुघटत है आपुनी, सतसंगति चित लेहु।
सबविध पाप कुकर्मको, आप त्याग करदेहु ॥ ३३ ॥
कहा विषयसुखके मिले, धर्म विगारत लोय।
पाये सोनेकी छुरी, पेट न मारै कोय ॥ ३४ ॥
धर्मोत्साहादिकविषै, विघ्न करै जो कोय।
प्रचुर स्थिति अनुभागयुत, पाप बंध तस होय ॥ ३५ ॥
धरम तथा धरमातमा, जु कछु धरम अस्थान[1]।
ताकी निंदा वचनमैं, महापाप पहचान ॥ ३६ ॥
मोक्षमार्ग रोकै कुधी, करि अविनय श्रीसंघ।
ताफल भवभवके विखैं, भोगै विघन अलंघ ॥ ३७ ॥
आपहि पाप सुबांधिकै, उदयकाल विललाय।
जो कोउ अपने हाथतैं, टांगै अपने पाय ॥ ३८ ॥

---

१ धर्मायतन।

छलवलदगा सु प्राण पर,-घात महा अघकार।
निर्दयं हृदय सु हरखकरि, ताकौं कहत सिकार ॥ ३९॥
अहिंसा परमो धर्मः, इति षटमतमैं न्याय।
तथापि जगत प्रपंचमैं, है पशुघात उपाय ॥ ४० ॥
जामैं पशुघातादिमय, यज्ञ निरूपण होय।
ताहि शास्त्र नहिं मानु बुध, तीक्ष्ण शस्त्र है सोय ॥४१॥
दीन हीन मृग मीन खग, प्राणघातके कार[1]।
कल वल छलमैं चतुरगति, कुमत कुश्रुत अघभार ॥४२॥
भौभौमैं अघ संचर्‍यौ, अजहूं सोई उपाय।
पहिलो भर[2] उतर्‍यो नहीं, आगैं अवर लदाय ॥ ४३ ॥
भवभव पापहिमैं रहे, चहे सु सुख विश्राम।
बोवै वृक्ष बंबूलका, चार्‍यौ चाहत आम ॥ ४४ ॥
शस्त्रादिकके निमित्तैं, शीघ्र मरण होजाय।
कर्मभूमि नर पशुनकी, है ऐसी थिति आय ॥ १ ॥
भोगभूमि नर पशु नरक, देव सु चतुरनिकाय।
परनिमित्त वस नहिं घटै, इनकी पूरन आय ॥ २ ॥
तथा सु उत्तम पुरुष जे, चर्मशरीर प्रभाय।
इन सबहीकी आयुविधि, अनपवर्त्त्य ठहराय ॥ ३ ॥
प्रथम भोग पुनयोगयौं, कहा कहत तुम वीर।
निज कर कर्द्दम लेपकर, धोवन चहत सु चीर ॥ ४५ ॥

---

१ करनेवाले। २ बोझा-भार।

वहु आरंभ जु अतिवुरो, वहुत परिग्रह भार ।
कुगति अधोगति आयुका, आस्रवहोय अवार ॥ ४६ ॥
होत अधोगति जगतमैं, गहत परिग्रह भार ।
तुलापला परिणाम तैं, कीजे वचन विचार ॥ ४७ ॥
दर्शनमोहोदय थकी, तत्त्वारथ न सुहाय ।
चरनमोहनी निमिततैं, अघहिंसा रु कपाय ॥ ४८ ॥
है भारी सव पापमैं, हिंसा अरु मिथ्यात ।
याके हटे घटै सहज, और पाप वहु भांत ॥ ४९ ॥
वुरो वचन चौर्यादिअघ, भेद जु कछु है नाम ।
व्यापि रह्यौ इनसवनिमैं, हिंसापाप तमाम ॥ ५० ॥
जिह तिहँ विधि सु घटाइये, हिंसा अरु मिथ्यात ।
थोरेहीमैं समुझिये, वहुत कामकी वात ॥ ५१ ॥
हिंसकतैं न्यारे रहो, हिंस्य सु रक्षा ठीक ।
हिंसा क्रिया सु पापफल, कुगति नरक तहकीक ॥५२॥
हिंसा हिंसक हिंस्य अरु, हिंसा फल अघभेद ।
अज्ञानी जानै नहीं, ठानै अधिका खेद ॥ ५३ ॥
सब ही जगजन सुख चहै, गहै न सुखकी वाट ।
रहै गहल उर अंध ज्यौं, लखै न घाट कुघाट ॥ ५४ ॥
सुखकारंन इक धर्म है, सो नहिं लखै अज्ञान ।
मोहद्रोह मिथ्यातवश, वृथा रहै हैरान ॥ ५५ ॥
अंतर मोहप्रकृति उदय, अभिप्राय विपरीत ।
वाहिज बहुरि कुशास्त्र पढि, दिढ अतत्त्व परतीत ॥५६॥

कोउ कहै जीव हि नहीं, कोउ कहै हिंसा नाहिं ।
इत्यादिक वहु कल्पना, मोह गहलतामांहिं ॥ ५७ ॥
मोह अंध चहुदिशभ्रमै, धर्म विमुख मग बंक ।
अभिप्राय विपरीत जुत, जीवघात निःशंक ॥ ५८ ॥
जीवघात निःशंकपनै, विषयाशक्त वेहाल ।
इक छिनमाहिं विरक्तचित, परमैं मगन त्रिकाल ॥ ५९ ॥
करै क्रिया मिथ्यातमय, धरै जु सुखकी आस ।
इह संसारदशाविषै, अदभुत मोहविलास ॥ ६० ॥
सिरीसर्वज्ञ उपदेशकी, परंपराको छोड़ ।
कलिमें प्रगटे धूर्त्त वहु, मत कियो पुस्तक जोड़ ॥६१॥
नहीं धरम उपदेश नहिं, तत्त्वप्ररूपन सार ।
मोहमयी भ्रमतम कथा, सवप्रकार निःसार ॥ ६२ ॥
जो अतत्त्वपोषक कथन, काव्यकला विस्तार ।
पापफंद सोछंद ज्यौं, सहत लपेटी धार ॥ ६३ ॥
वाहिजशब्द समिल ललित, अर्थ अतत्त्व अलीक ।
विषफलवत तिह काव्यकी, है सु ऊपमा ठीक ॥ ६४ ॥
कहूं आपको भयदियो, कहूं सु सुतखुख लोभ ।
कलिमैं प्रगटे धूर्त्त वहु, उपजायो जग छोभ ॥ ६५ ॥
सत्यारथ मग त्यागिकैं, कियो मिथ्यामत पोष ।
इह कलिकाल कराल अति, दिखलाये निजदोष ॥ ६६ ॥
समयादिकके निमित या, क्षेत्रतने वहु जीव ।
केइ अति जड़ केइ बक्र इति, धरम सु विमुख सदीव॥६७॥

बहु आकुलता कलहमय, पुण्यहीन बहु जीव ।
दुखमकाल या क्षेत्रमैं, वरत रह्यो सु सदीव ॥ ६८ ॥

बहु हिंसा मिथ्यातक्रिया, विविध कुमत धिक चाल ।
आजहिं इम समय प्रवृति, आगैं कौन हवाल ॥ ६९ ॥

लग्यौ अनादि मिथ्यातमल, बहुरि कुशास्त्र प्रसंग ।
एक आपुही बाउलो, दूजे चढ्यौ सु भंग ॥ ७० ॥

जो कोउ इष्टस्थानतैं, उलटा करै जु दोर ।
ताकौं अधिक जु दूर है, इष्टस्थान कठोर ॥ ७१ ॥

बडे २ नृप जगपती, पहिले भये विख्यात ।
रहे परिग्रहमय तदपि, कियो न क्रिया मिथ्यात ॥ ७२ ॥

त्याग सनातनधर्मको, होय स्वछंद अवार ।
फैल्यौ या कलिकालमैं मत नाना परकार ॥ ७३ ॥

जु कछु प्रयोजनमयि कथन, निर्णय योग्य अवार ।
तामैं क्यौं भूलहिं चतुर, करहिं परीक्षासार ॥ ७४ ॥

सब मत सत्य न संभवै, विषम परस्पर रीत ।
सबसौं श्रेष्ठ तलास कर, कीजे एक प्रतीत ॥ ७५ ॥

कौन ऋषीने नहिं कियौ, क्रोध लोभ छल काम ।
ताकी कथा तलासकरि, लीजे ताको नाम ॥ ७६ ॥

प्रथमहि वक्तापुरुषकी, सु कुलक्रिया तहकीक ।
फिर निर्णय तस वचनको, करइ परीक्षा ठीक ॥ ७७ ॥

आप्तागम सत्यार्थ विन, सव उपदेश अनर्थ ।
जहँ मूलहि सदोप तहँ, उत्तर कौन हि अर्थ ॥ ७८ ॥
तर्क छंद व्याकर्ण वहु, अलंकार काव्यर्थ ।
तत्त्ववोधसौं सव सफल, या विन सव ही व्यर्थ ॥ ७९ ॥
स्वहित तत्त्व ज्यौं नहिं रुचै, रुचै और सव वात ।
चतुराई चूल्हे परै, इति जगकहत विख्यात ॥ ८० ॥
तत्त्ववोध विद्याविशद, निजस्वरूप चिद्रूप ।
या विन वहु विद्याकला, सवहि अविद्यारूप ॥ ८१ ॥
आपु न दोप अपनो गुनै, परकी सुनै न वात ।
ऐसे मित्रमिलापतैं, मेरो मन पछतात ॥ ८२ ॥
है मिथ्यात सन्मुख प्रवल, समय प्रवाह सदीव ।
भवसागरमैं सहज ही, वहेजात जगजीव ॥ ८३ ॥
उलटा धार प्रवाहमैं, वहुवल जोर सदीव ।
कठिन रीततैं भवउदधि, तरइँ सु विरले जीव ॥ ८४ ॥
निमित ज्ञान विद्या सुगति, जोतिपचक्र विमान ।
नहिं परकौं दुख देहिं कछु, इह निश्चय उर आन ॥८५॥
आर्षरूप चहुं वेद मैं, परम अहिंसा धर्म ।
इति सत्यार्थ सुवोध सजि, तजि पशुघात कुकर्म ॥८६॥
देव गहै नहिं मांसमद, नहीं चहै पशुघात ।
देव आवरणवाद वहु, फैलि रह्यौ मिथ्यात ॥ ८७ ॥

१ फिर आगेवाले किस अर्थ के (कामके) हैं ।

राहुकेतु तन खंड है, भये एकके दोय ।
इत्यादिक दुःश्रुति कथन, त्यागी जे भवि ल्योय ॥ ८८ ॥
तथा शुक्रग्रह देवको, एक चक्षु कहै हीन ।
इह सव दोष सु देवमैं, मतमानौ जु प्रवीन ॥ ८९ ॥
कहै जु वुधग्रहने कियौ, घोड़ीपशू प्रसंग ।
इत्यादिक अघमय कथन, है मिथ्या सरवंग ॥ ९० ॥
नरनारी तिरजंचनी, औदारिक तन धारि ।
ता संग देवनकै नहीं, क्रिया जु कामविकार ॥ ९१ ॥
नहीं सु कवलाहार कहुं, नहीं निहार विकार ।
कंठमाहिं अमिरत श्रवै, मानसीक आहार ॥ ९२ ॥
अंग उपंग न भंग नहिं, घाटवाढ कछु थाय ।
अतिसुंदर संस्थानमय, देव सु चतुरनिकाय ॥ ९३ ॥
नहीं गर्भतैं जन्म नहिं, वाल्य जरा नहिं थाय ।
तरुण अवस्था सुखमयी, देव सु चतुर निकाय ॥ ९४ ॥
दिव्य वैक्रियक देहमैं, नहिं गद रोग गिलान ।
नहीं शस्त्रकरि खंड है, इति निश्चय उर आन ॥ ९५ ॥
वहुत वहुत देवांगना, धरइं जु इकइक देव ।
नहिं कमती वत्तीस तैं, सहज नियम है एव ॥ ९६ ॥
जन्म सेज उपपादतैं, देह वैक्रियक रूप ।
केई मिथ्यादृष्टि हैं, केइ सम्यक्त्वस्वरूप ॥ ९७ ॥
नहिं मिथ्यात अस्थापना, देवस्थाननिमांहिं ।
पै भावनिकी गति घनी, है विचित्र सक नाहिं ॥ ९८ ॥

केई इष्ट प्रधान धरि, पूजइं जिनवर देव ।
केइं पूजैं कुलदेव कहि, इत्यादिक वहु भेव ॥ ९९ ॥
वडे देवकी प्रवृति लखि, केइ पूजइं जिनराज ।
केइ लज्या केइ सुकृतहित, करइं धरमका काज ॥ १०० ॥
केई इंद्राज्ञाथकी, केई लोकव्यवहार ।
केइ अनध्यवसान उर, भाव अनेक प्रकार ॥ १०१ ॥
जेते महत स्थानपति, महतऋद्धि धर देव ।
ते सब ही सम्यक दसी, सहज नियम है एव ॥ १०२ ॥

कर्त्तावादी से तर्क ।

प्रथम अन्य कोउ नहिं हुतौ, नहिं कछु पर उपकार ।
निज उपकार न संभवै, क्यौं जग रचि कर्त्तार ॥ १०३ ॥
विना प्रयोजन कार्य कछु, करै जहां करतार ।
तहाँ जु व्यर्थ अनर्थ इति, दोप अनेक प्रकार ॥ १०४ ॥
जगजनकी दुःप्रवृतिकौं, अंतरजामी ईस ।
पहिले नहिं रोकै सु क्यौं, पाछै करे जु रीस ॥ १०५ ॥
परको अशुभ क्रियानका, अखतियार जो देय ।
ताहूकौं तिहँ अशुभका, है प्रसंग स्वयमेव ॥ १०६ ॥
सर्व शुभाशुभ जगक्रिया, आप करावै ईस ।
को भोगै फल अशुभको, परवश पै क्या रीस ॥ १०७ ॥
जगके सर्व क्रिया तने, कर्त्ता हुकुम प्रचंड ।
सोई शुभाशुभफल लहै, परवशपैं नहिं दंड ॥ १०८ ॥

कर्त्ताकी आज्ञा थकी, जो प्रतिकूल ए सृष्ट ।
अंतरजामी ईस क्यौं, रचना रची अनिष्ट ॥ १०९ ॥
रंच चितवन मात्रतैं, जो करि सकइ अवार ।
अल्प प्रयोजन हित सु क्यौं, धरइ आप अवतार ॥११०॥
जाहि विना चेष्टा किये, सर्व सिद्ध हो जाय ।
सो पूरन सामर्थ्य क्यौं, करै अनेक उपाय ॥ १११ ॥

अन्यमतीकी देवमूर्तियोंका वर्णन ।

कोऊ अंगविकृत अधिक, कोऊ अंग करि हीन ।
वक्र भयानक मूर्ति इति, देवस्थल वहु कीन ॥ ११२ ॥
संधि जोड़ कोउ अंगमैं, कहू सु रंग रँगाव ।
मायाचार इम मूर्त्ति किम, पूजनीक ठहराव ॥ ११३ ॥
नहीं कामकी वेदना, नहीं कछु विषयप्रसंग ।
अहो कहो सो पुरुष क्यौं, गहै सु इस्त्रीसंग ॥ ११४ ॥
नहिं जाकौं कछु भय रह्यौ, नहिं हिंसादिविकार ।
अहो कहो सो पुरुष क्यौं, गहै हाथ हथियार ॥ ११५॥
जो आपुहि सामर्थ्य सो, क्यौं पशुपर आधीन ।
पशु पंछी पंखाश्रये, वाहनगति अति हीन ॥ ११६ ॥
पशु वाहनतैं ईसको, बढै अधिक मरजाद ।
अथवा मारग गमनको, होय न खेद विखाद ॥ ११७ ॥
कोऊ अंग सु मनुष्य को, कोऊ अंग पशुरूप ।
कलिमैं मूर्त्त बनी घनी, भोरे हित भ्रमकूप ॥ ११८ ॥

सोरठा ।

वक्र भयानक मूर्त्त, प्रगट अमंगल रूप है ।
ताकौं जगमैं धूर्त, मंगल कहि थापै विविध ॥ ११९ ॥

अद्वैतवादका निराकरन ।

लखै सीप को जो रजत, सो तौ भ्रमकी बात ।
भिन्न २ है वस्तु दोउ, इह सत्यार्थ विख्यात ॥ १२० ॥
रज्जूको जो अहि लखै सो तौ भ्रमकी बात ।
भिन्न भिन्न है वस्तु दोउ, इह सत्यार्थ विख्यात ॥१२१॥
बहु पुद्गलपरमाणु मिलि, खंध कनक इति नाम ।
पुद्गल वस्तु सु कनक इह, भिन्न २ वह ठाम ॥१२२॥
नाम अपेक्षा इक तथा, जाति अपेक्षा एक ।
कनकरूप पुद्गलदरव, निश्चय वस्तु अनेक ॥ १२३ ॥

नीतिके दोहे ।

वक्र जनन सौं वाद नहिं, नहिं कछु वचनालाप ।
सज्ञानी दुःसमय लखि, मौन मंत्र गहि आप ॥ १२४ ॥
दीर्घ दृष्टितैं देखिये, समय प्रवृत्ति अवार ।
रहिये सबविधि स्वहितमें, समाधान हुसियार ॥ १२५ ॥
नहिं काहूसँग वैर कछु, नहिं कलंकको काम ।
भली प्रवृत्ति सु जसमयी, नीतिनिपुण निजधाम ॥१२६॥

चार संख्याका वर्नन ।

स्तवौं च्यारौं संघ जहँ, स्तवैं सुरगण चार ।
जो च्यारौं संज्ञा हटै, कटै कष्ट गति च्यार ॥ १२७ ॥

प्रगटै स्वपर उपकारपद, परमारथ उपचार ।
लहइ नीतिव्यवहार शुभ, शिक्षाचार हि च्यार ॥ १२८ ॥

इस्त्री राजसु देश कथा, तथा कथा आहार ।
यामैं काल न खेपिये, हैं विकथा ये च्यार ॥ १२९ ॥

इस्त्री वश हूजे नहीं, नहीं गुह्य सलाह ।
नहीं सरव धन सौंपिये, नहिं परसंग तजि राह ॥ १३० ॥

परधन निज ठगिये नहीं, नहिं ठगाइये आप ।
गाफिल रहौ न धूर्त्तसँग, तजिये अमिल मिलाप ॥ १३१ ॥

अन्यमतीसौं ओराहनारूप अलंकार ।

वरावरी सव कोउ करै, कच्चोरी होजांहिं ।
श्री सर्वज्ञ वचन विना, पूरी परती नाहिं ॥ १३२ ॥

गही नहीं तिय नहिं सु धन, नहीं कह्यौ दुरवाक ।
विषयविरक्त जु कौन ऋषि, कहिये ताकी शाख ॥ १३३ ॥

ज्ञानक्रियाकरि भ्रष्ट नहिं, नहीं नीच कुल जात ।
ऋषिगणकी सु कथानमैं, है तलासकी वात ॥ १३४ ॥

काम क्रोध छल लोभ करि, जाकी प्रवृति मलीन ।
सो ऋषि कर्त्ता शास्त्रका, इह कलिप्रवृति नवीन ॥ १३५ ॥

पुरुषारथ चतुरंगमैं, प्रथम सु धरम प्रसिद्ध ।
जातैं कामरु अर्थ शिव, होय सहज सव सिद्ध ॥ १३६ ॥

राजछत्र क्षत्री सुवुध, वैश्य शुद्धव्यापार ।
ब्रह्मज्ञान ब्राह्मण वृती, शूद्र सु सेवा सार ॥ १३७ ॥

उचित सु संगति बैठिये, उचित पहरि पोशाक ।
रोजगार कीजे उचित, उचित बोलिये वाक ॥ १३८ ॥

भोजन अरु मैथुन तथा, निद्रा बहु स्वाध्याय ।
संध्यात्तमय सु चतुर इति, वर्जनीक ठहराय ॥ १३९ ॥

बहु विद्या कारीगरी, अनालस्य परिणाम ।
बहु सुमित्र संग्रह अवशि, आवै अपने काम ॥ १४० ॥

ध्यान अकेलेही बनै, दोय सु मिलि सल्लाह ।
तान गान मिलि तीन शुभ, चतुर सु मिलि चल राय १४१

धरे धैर्य आपद समय, अति आकुल नहिं होय ।
करे उपाय सु धर्मधर, अंत सुखी है सोय ॥ १४२ ॥

बालपनै विद्या पढे, यौवन सुगृह सम्हाल ।
धरै धरम उत्साह बहु, वृद्ध समाधि सुकाल ॥ १४३ ॥

विषय हानिसौं सुमति मति, मंद बुद्धि धनहान ।
धर्म हानिसौं कुगति गति, अजस हानि कर दान ॥१४४

तियविरोध सौं कलह गृह, राजविरोध सु शंक ।
धरम विरोध सौं कुगति गति, बंधु विरोध कलंक ॥ १४५

स्वामि द्रोह कुवचन सहित, पंडित द्रोह सु तर्क ।
राजद्रोह सौं दुरदशा, धर्म द्रोहसौं नर्क ॥ १४६ ॥

कहूं साम्य कहुं दामदे, कहुं विभेद कहुं दंड ।
प्रजा पाल जीतै जु रिपु, करि निग्रह पाखंड ॥ १४७ ॥

विधना (कर्म) सौं तर्क ।

वृत्ती कृष हिंसक सवल, कृपन अधिक धनवान ।
दाता कियै दरिद्र गति विधना अति नादान ॥ १४८ ॥

स्त्रीनिषेधालंकाररूप ।

मैना तेरे ज्ञानमैं, तूती नरक निदान ।
तोता कत गत कुगत है मोर नेममैं प्रान ॥ १४९ ॥
है स्त्री परजाय मैं, कठिण जु मायाचार ।
इनके फंदे नहिं फसै, सोई पुरुष हुँसियार ॥ १५० ॥
रोजगार कीजे तथा, धर्म कार्य इह दोय ।
अवर अनर्थ रु व्यर्थमैं, वृथासमय मत खोय ॥ १५१ ॥
संसारी जनको जु धन, है इग्यारवों प्रान ।
परधन हरै सु अधम दुख, भोगै कुगति निदान ॥ १५२ ॥
विषधर नखधर शृंगधर, तीक्ष्णदाढ पशु कूर ।
इनहूतैं अति अधिक रहु, क्रूर जनन सौं दूर ॥ १५३ ॥
धनसंग मन न बढाइये, अंत होत दुखदाय ।
जलसंग जलज वढै घटै, जल तव जल जल जाय ॥ १५४ ॥
खोटो द्रव्य रु दुरवचन, दुहुंकी एकहि चाल ।
जगमैं जाको दीजिये, फेर देय ततकाल ॥ १५५ ॥
राह चलत नेकी करै, रहै बदीसौं दूर ।
इहभव प्रिय सवजननको, परभव सुख भरपूर ॥ १५६ ॥
असि मसि कृषि वाणिज्यता, पशुपालन दासत्व ।
इह छह विधि आजीविका, कर्मभूममहिं सत्व ॥ १५७ ॥

बालपनै सु पिताहुकुम, यौवन पतिसंगलार ।
वृद्ध सु रक्षा पुत्रतैं, तिय स्वातंत्र्य न सार ॥ १५८ ॥
रणतैं हार्‍यौ पुरुष तथा, इस्त्रीबालक लार ।
कायर रोगी शरणगत, इनका दोष निवार ॥ १५९ ॥
जन्मजरा दुख है महा, दुःख मरन अरु शोग ।
दुःख सु इष्ट वियोगको, दुख अनिष्ट संयोग ॥ १६० ॥
मानसीक दुख और दुख, शारीरक रोगाद ।
अकस्मात दुख नित्य दुख, क्षुधा तृषादि विषाद ॥ १६१ ॥
मानसीक अघ है बुरो, कठिन जु मनकी दौर ।
तंदुल मच्छ जु याहि वस, लहै अधोगतिठौर ॥ १६२ ॥
समय समय जैसे जहाँ, आतमके परिणाम ।
त्यौं ही पुण्य रु पापमय, समय प्रबध अविराम ॥१६३॥
धर्मकार्य मम निमिततैं, हानि कहूँ मत होहि ।
इति पापास्रव तापतैं, अतिभय है डर मोहि ॥ १६४ ॥
निशिवासर वसु जाममैं, जो कछु क्रियाकलाप ।
कर्म छाप सो सब लगै, गाफिल रहो न आप ॥ १६५ ॥
आज जु सुधरै सुगममैं, काल कठिन है सोय ।
ज्यौं ज्यौं भीजै कामरी, त्यौं त्यौं भारी होय ॥ १६६ ॥
अंतसमय कुछ नहिं बनै, धर्म कीजिये आज ।
लाय लगै तब कूपकौं, खोदत सरै न काज ॥ १६७ ॥
जा कारज करवे विना, मिटै न जगजंजाल ।
सो कारज करलीजिये, कहा आज अरु काल ॥ १६८ ॥

भवजल भारी गहनमैं, गहिरा गोता खाय ।
जो पहिलै चेतै नहीं फिर पाछै पछताय ॥ १६९ ॥

अक्षरके जु अनंतवें, भाग ज्ञान रहिजाय ।
चेतन क्यौं न चितार तू, दुख निगोद परजाय ॥१७०॥

गीता छंद ।

तजि अनादि निगोद थित व्यवहार रास चढै जहां ।
कछु अधिक दोय सहस्र सागर इंतजार रहै तहां ॥
जो कहूं शुभनिमित पावे शिवपुरी कुशलात है ।
नहिं तौ तहांतैं उलटि फिर जु निगोदहीकौं जात है १७१

दोहा ।

शुभनिमित्त लहि चतुर इति, चेतै क्यों न अवार ।
सुख सीढी विचले सु जहँ, फिर अनंत संसार ॥ १७२ ॥

उदय असाताके प्रथम, कीजे पुण्य उपचार ।
पहिले बांध सु बांधिये, तौ नहिं आवै वार ॥ १७३ ॥

गृहारंभ बहुदिन कियौ, लियौ महा अघ साथ ।
ज्यौं चूल्हेके नीपतैं, अंतकालिमा हाथ ॥ १७४ ॥

त्यागभावविन नहिं मिटै, गृहारंभ संताप ।
जीये जोलौं जगतमैं, सीये गुदरी पाप ॥ १७५ ॥

तिनतैं सरभरि क्यौं बनै, जाहि बहुत संसार ।
तिनको तो रहिवो इहां, तोहि पहुँचिवो पार ॥ १७६ ॥

भिन्न भिन्न हैं जीव सव, मिलै न काहू कोय।
अहंबुद्धि धरि आपुमैं, परमैं ममता खोय॥ १७७॥
है अनंत जगजंत उभय,-भेद सु भव्याभव्य।
भव्य मोक्षके योग्य हैं, है सु अयोग अभव्य॥ १७८॥
भव्य सु होय अभव्य नहिं, नहिं अभव्य ह्वै भव्व।
स्वतः स्वभावें उभयविध, जगत जीव इति सव्व॥१७९॥
चहुंगतिमय संसार यह, अक्षयराशि अनंत।
सो सव पर आपेक्ष तजि, स्वहित साधिये संत॥१८०॥
लख जगजंतु अनंत इति, अक्षयराशि अखूट।
परापेक्ष तजि स्वहित निधि, लूट सकै सो लूट॥१८१॥
वहुत भ्रमे भवचक्रमैं, विरले पावैं पार।
तजि सरभरि सव कुटुँवकी, अपनी राह सुधार॥ १८२॥
जावै तव भावै नहीं, आवै गावै गीत।
ज्यौं सरायको वाउलो, त्यौं कुटुंवकी रीत॥ १८३॥
पुलनीचें जल जात ज्यौं, करै न मूढ विचार।
क्षण प्रति आयुस्थिति घटै, कीजे काज अवार॥ १८४॥
संसारी गृहकाजमैं, मंदराग व्यवहार।
धर्मकाज कल्यानमैं, तीव्र राग रुचि धार॥ १८५॥
वहुत परिश्रम को करै, अल्प प्रयोजन हेत।
तज गृहकाज सुधर्म गहि, ज्यौं शिवरमानिकेत॥ १८६॥
आय काय वल अल्प है, तद्यपि चतुर सुजान।
चूकै नहीं स्वकाजको, करै सु निजकल्यान॥ १८७॥

सोवै खोवै संपदा, जागे भागै चोर ।
लागै वस्तु सम्हालमैं, होत जात है भोर ॥ १८८ ॥
दिन सु जेठ वैसाखका, पूस माघकी रात ।
तत्त्वज्ञान अभ्यास विन, वृथा न खोवो भ्रात ॥ १८९ ॥
व्याकरणादिक हलथकी, बुद्धीखेत सँवार ।
तत्त्वज्ञान निज बीजवर, वोये सुफल अपार ॥ १९० ॥
कर अभ्यास सु शास्त्रको, दान सुपात्रहिं देहु ।
चलाचलीकी राहमैं, भला भली करलेहु ॥ १९१ ॥
धन सु लब्ध वहु मुग्धनर, जास प्रान धनमात्र ।
ताहि अशुभ संजोग वहु, कृपण कुगतिको पात्र ॥ १९२ ॥
जो धन संपति पाय कछु, करैं न धर्मोत्साह ।
ते मलीन मत दीनचित, लहैं हीनगति राह ॥ १९३ ॥
धन सुमार्ग मैं खरचते, सिद्ध उभयभव काम ।
खांय आमके आम अरु, गुठलीके हों दाम ॥ १९४ ॥
ईंच रु खींच कु त्यागकैं, सवविधि धर्मसँभाल ।
करहू स्थिरता मार्गकी, उज्जलता गुणमाल ॥ १९५ ॥
धर्मकार्य जो कोउ करै, ताकी स्तुती कराय ।
जिहँ तिहँ विधिकर तासकी, कीजे आप सहाय ॥ १९६ ॥
कीजे मार्गप्रभावना, सकलसंघ समुदाय ।
लीजे जस हूजे सुखी, वहुविधि पुण्य उपाय ॥ १९७ ॥
चौथाई धन धर्ममैं, उत्तम त्याग सु धन्य ।
छठा अंश मध्यम पुनः दशवाँ अंश जघन्य ॥ १९८ ॥

एक सु अपने भोगहित, दोय कुटुँब अनुराग।
दोय अमानत धर्म इक, धन आमद छह भाग ॥ १९९ ॥
कहूं दुकालादिक तथा, और बडे केइ काज।
तास हेत छह भाग मैं, दोय अमानत आज ॥ २०० ॥
जाहि सु गृह परिवारको, घनो भार नहिं होय।
और अधिक धन धर्ममैं, खरच करै भवि लोय ॥ २०१ ॥
जैनी जनतैं प्रीति उर, धरो सु हित मित बैन।
और अनारज हैं सभी, आरज जगमैं जैन ॥ २०२ ॥
हैं जेते जैनाश्रय, तिन सबका सनमान।
मार्ग स्थिरता सुजसमय, आदर योग्य स्थान ॥ २०३ ॥
जाहि धर्मसौं प्रेम तस, धर्मात्मासौं प्रेम।
इह सु न्याय शिक्षा सबल, धरो भव्य उर नेम ॥ २०४ ॥
मित्र सोई जाके मिले, बढै धरम उत्साह।
अन्य मित्र सम शत्रु ज्यौं, बरतै कुमति कुराह ॥ २०५ ॥
सब कुटुँब स्वारथ सगे, लगे सु पुत्र कलत्र।
परमारथके गुरु सगे, कै साधर्मी मित्र ॥ २०६ ॥

सवैया एकतुकिया।

स्वारथके हेत सबही कुटुंब आतमाकौं,
आय आय घेरैं ऐसैं जैसैं चंदगहना।
मित्र मित्रताई चाहे भुजबल भाई चाहै,
पुत्र जु कमाई चाहै नारी चाहै गहना ॥

परसंग मोहभाव वंध को वढाव करै,
परको ममत्व त्याग, परभाव गहना ।
जलमैं कमल रहै तैसें पर संग गहै,
परभाव न चहै सुभाव निज गहना ॥ २०७ ॥

झूलना ।

क्रोध मद लोभ छल चतुर च्यारों तजे,
राग अरु दोपकी जुग जुहारे ।
ए सवै पुव्व कृत वंध पुद्गल उदै,
भाव यातैं जुदे हैं हमारे ॥
शुद्ध निजमानता देखता जानता,
जगतके दरव परजाय सारे ।
चाल ऐसी चले मोक्षलक्ष्मी मिलै,
कर्मकी रेखपर मेख मारे ॥ २०८ ॥

कवित्त ।

पुण्यास्रव आकर्षण सहजहि, चंचल मन वस कीजे वीर ।
उच्चाटनविधि वंधनिर्जरा, विद्वेपन परपरनति पीर ॥
संवर पापप्रकृति स्तंभन, मोहो मोह प्रकृति गंभीर ।
तजि अजीव निज जीव मोक्षहित इति षट कर्म साधि धरि धीर॥

दोहा ।

भवभवमैं मिलिवो कियो, लियो स्वाद वहुवार ।
तातैं नहिं नीको लगै, फीको विषयविकार ॥ २१० ॥

भवभवमैं कहुं नहिं मिल्यौ, मिल्यौ आज यहिवार ।
तातैं निज अनुभव सुरस, स्वादत वारंवार ॥ २११ ॥
राग घटे घट जातु है, इंद्रियविषयविकार ।
नायक हटे लटैं सवै, कटक फौज विस्तार ॥ २१२ ॥
मोह हटे ममता घटै, कटैं कुकर्म कलेश ।
फटै पटल मिथ्याततम, प्रगटै सूर उपदेश ॥ २१३ ॥

गुणस्थानकथन ।

पापमयी दो थान हैं, तीजा मिश्र सु भाव ।
तुर्यादिक अस्थान अति, सुकृत सुपुण्य प्रभाव ॥ २१४ ॥
अविरत चौथे थानलौं, पंचम अणुव्रतरूप ।
उपरिम सर्वस्थान महा, व्रतस्वरूप चिद्रूप ॥ २१५ ॥
वधवारी गुणथानमैं, पुण्यास्रव वहु भेव ।
प्रकृति प्रचुर अनुभागसह, आन मिलैं स्वयमेव ॥ २१६ ॥
अप्रमाद गुणथानके, वधवारीमैं सार ।
होय शुद्ध उपयोग निज, शुद्ध सु गुण अविकार ॥ २१७ ॥
है विषाद परमादको, छठे स्थानलौं दौर ।
उपरिम अष्टस्थान है, अप्रमाद सुखठौर ॥ २१८ ॥
सम्यग्दर्शन मूलगुण, उत्तर गुण व्रतनेम ।
इह रहस्य समुझै सुवुध, जास हृदय रुचिप्रेम ॥ २१९ ॥
रुचि प्रतीत उरधरि सहज, अणुव्रत नियम सु धार ।
श्रवन करहि प्रवचन स्वहित, सो है श्रावकसार ॥ २२० ॥

मोहग्रसित सब जगतजन, दुखिया अति उरराग ।
सुखिया सो जिनके हृदय, सम्यक ज्ञानविराग ॥ २२१ ॥
रतनजडितका पींजरा, पंछी प्रति दुख द्वंद ।
ज्ञानी बहु संपति लखै, संसारी अघफंद ॥ २२२ ॥
बहु रागादि विकार तज, तज सु परिग्रहभार ।
जिनमुद्रा जा दिन धरै, धन्न घडी धन वार ॥ २२३ ॥
है सु वडाई धरमतैं, धनतैं नहीं महंत ।
धर्मवंत मुनिचरनपैं, नमैं घने धनवंत ॥ २२४ ॥
सब ही 'जग' जनतैं वडे, सम्यकदृष्टि सुजान ।
तिनतैं देशव्रती वडे, वडे महाव्रतवान ॥ २२५ ॥
धर्ममाहिं जे हैं वडे, तिनकी विनय पुनीत ।
छोटे का (हू) आदर करै, यह सुन्यायकी रीत ॥२२६॥

चार भावना ।

कोउ प्रानी मत दुखित हो, सुखी होउ सब जीव ।
सर्वसत्वपैं है सु मम, मैत्री भाव सदीव ॥ २२७ ॥
सम्यक ज्ञानादिक जहाँ, शिवमारगकी रीत ।
गुणाधिक्यपैं है सु मम, प्रीत प्रमोद प्रतीत ॥ २२८ ॥
रोग दरिद्र क्षुधादियुत, क्लिश्यमान जे जंत ।
तिनपै करुणाभाव धरि, परउपकारी संत ॥ २२९ ॥
मिथ्यात्वादिक ग्रसित जे, हैं अविनयि अज्ञान ।
रागदोष तजिये तहाँ, भाव मध्यस्त प्रधान ॥ २३० ॥

यह 'जग'जाल अनादि है, देह सु है ज्यौं खेह ।
सजे भाव संवेग उर, तजे सु परसौं नेह ॥ २३१ ॥

गीता ।

यह जगत जाल विटंवना भवभ्रमन दुःख अनादिका ।
यातैं सु भवि वहु दुरित नित उर धरिय नहिं आल्हादिका ॥
है तन अपावन अतिमलीन सु अंत छीन दशा धरै ।
याका सु तजि विश्वास आस सु मोक्षहित उद्यम करै २३२

षट्कर्मोपदेश ।

पूजन देव सु सेव गुरु, जिनवानी स्वाध्याय ।
कर संजम तप दान यह, छह सु कर्म मनलाय ॥२३३॥

चौपाई ।

जिनपूजन गुरुभक्ति उपाय । कीजे जिनवानी स्वाध्याय ।
धर संजम तप दीजे दान । सव यह छह सु कर्म उर आन २३४

चारप्रकार जिनपूजा ।

है सु नित्यमह पूजनभेद । तथा महामह भेद अखेद ।
कल्पवृक्ष पूजन है सार । इंद्रध्वजयुत भेद सु चार ॥ २३५ ॥
गहिये नितप्रति पूजनरीत । श्रीजिनमंदिर रचिय पुनीत ।
हैं इनके वहु भेद विधान । नाम नित्यमह पूजन जान॥२३६॥
है सु महामह पूजनरीत । सर्वतोभद्र चतुर मुख नीत ।
मुकुटवंध राजन सौं होय । है वाको सामर्थ्य जु सोय॥२३७॥
कल्पवृक्ष ज्यौं पूजनरीत । चक्रवर्त्तितैं वनै पुनीत ।
षट खंडनके पुरुष सु जान । जहाँ लहैं मनवांछित दान॥२३८॥

इंद्रध्वजपूजनकी रीत। इंद्रहितैं यह वनै पुनीत।
वहुविक्रिया सु तन विस्तार। नंदीसुर पूजनव्यवहार ॥२३९॥

सोरठा।

जिनपूजन सु विशेस, है सु हजारां भेद जू।
सो सबविध उपदेश, दुर्लभ या कलिकालमैं ॥ २४० ॥

गुरुभक्ति स्वाध्यायादि।

चौपाई।

परम दिगंबर गुरुपदसार। सेवहु भक्ति हिये अवधार।
पढिये जिनवानी हितठान। जो प्रगटै तत्त्वारथ ज्ञान ॥ २४१ ॥
पंचेंद्रिय मन निजवश धरै। प्राणिमात्रकी रक्षा करै।
धरै सु वहुविध संजमरीत। यथाशक्ति तप तपै पुनीत ॥२४२॥

दानविधि।

दोहा।

अनुग्रहार्थ जो कीजिये, निज धनादिका त्याग।
यह सु दान भवि जान शुभ, दान देहु वडभाग॥२४३॥

चौपाई।

करुणादान रु पात्र सु दान। पुन समदान रु सकल सु जान।
यह सु दान है च्यार प्रकार। तासु कथन सुनि शुचिरुचिधार॥

करुणादान।

दुखित भुखित 'जग' जावतजीव। सबपैं करुणाभाव सदीव।
दीजे वस्त्र औषध आहार। सबप्रकार परका दुख टार॥२४५॥

मनुष तथा तिरजंच जु कोय । वधवंधनसंकटमैं होय ।
ताका सवविध कष्ट निवार । कीजे वहुविध पर उपकार ॥२४६॥

दोहा ।

दुखित भुखितकी खवर सुनि, पहुँचावै तसु ठौर ।
मांगे वा मांगे विना, देहु दयाकी दौर ॥ २४७ ॥

चौपाई ।

परमदिगंवर श्रीमुनिराज । कहिये पात्र सु धर्मजिहाज ।
और सु श्रावक व्रती प्रधान । अविरत सम्यकदृष्टी जान २४८
श्रीमुनिभक्ति हिये अवधार । विधिपूर्वक दीजे आहार ।
योग्य सु औषध देय विचार । शौचोपकरण कमंडलु सार२४९
संयमहित सु पिच्छिका जान । ज्ञानोपकरण सुशास्त्रप्रमान ।
वनमैं दे वस्तिका वनाय । जहँ गुरु ध्यानाध्ययन कराय २५०

सोरठा ।

देय उचित आहार, औषध धर्मुपकरण जू ।
अवर वस्तिका सार, चारदान भवि दीजिये ॥ २५१ ॥

चौपाई ।

जे हैं श्रावकवृती विख्यात । तथा सु है श्रीआर्या मात ।
आहारादिक च्यारौं दान । यथायोग्य दे वस्त्रविधान ॥२५२॥
किंचित वृती गृहस्थ उदार । अविरत सम्यकदृष्टी सार ।
तिन्हैं सु ग्रहसामग्री सर्व । देहु सुवर्णादिक वहु दर्व ॥ २५३ ॥
है जैसो जिहँ पात्र सु धर्म । तैसौ तहाँ दान विधि पर्म ।
याका और कथन विस्तार । वहु आचारशास्त्र अवधार ॥२५४॥

सोरठा।

पात्र सु व्रत अनुकूल, दान दीजिये भक्तिजुत।
धर्मवृद्धि सुखमूल, मार्गस्थिरता शुभमयी॥ २५५॥

दोहा।

दात्रिपात्र ज्यौं सबनिका, होय परम उपकार।
निज धनादिका त्याग जो, सो सुदान है सार॥ २५६॥

अडिल्ल।

दात्रिपात्र विधिद्रव्य भेद ए च्यार हैं।
इनका कथन विशेष ग्रंथ विस्तार है॥
दत्रि पुण्य लह पात्र धर्म समाधानता।
अनुमोदन कर और हु सुख मनमानता॥ २५७॥

दोहा।

जहँ रत्नत्रय निधि रहैं, सो है पात्र पवित्र।
विधिपूर्वक बहु भक्तितैं, दीजे दान सु मित्र॥ २५८॥
दातृ पात्र दुहुंको भलो, धर्मवृद्धि कल्यान।
जिनशासन जयवंत'जग' बरनन पात्र सुदान॥ २५९॥

चौपाई।

जे जैनी जन निजसम होय। ताकौं दान दीजिये लोय।
तथा हीनकौं आपु समान। करै धरै जु रीत समदान॥२६०॥

दोहा।

साधर्मीजनकौं सु धन, दीजिय आदर जुक्त।
यही रीत समदान की, लखो जिनागम मुक्त॥ २६१॥

देता लेता दुहुनिकौं, मार्ग सुधर्म उपाय।
इह अदभुत सुरहस्यमय, श्रीजिनशासन न्याय ॥ २६२ ॥

चौपाई।

सकलदान वा सर्वदत्ति वा अन्वयदान।

पुत्रादिक जु उचित परिवार। तिनकौं सब सौंपै गृहभार।
सबविधि धर्मरीति समुझाय। सब संपत त्यागै समुदाय २६३
सकल त्याग मुनिव्रत ले कोय। तथा सु उत्तम श्रावक होय।
गृहारंभ है अघकी खान। तातैं सकल तजै बुधवान ॥२६४॥

दोहा।

पात्रदान दे भक्ति जुत, आदर जुत समदान।
करुणादान दयालु सज, सब तज इति चहुदान ॥२६५॥

इति श्रीधर्मरत्नोद्योतग्रंथमें उद्यमोपदेश नामक पंचमाधिकार समाप्त हुवा ॥ ५ ॥

धर्मरत्नोद्योत ।

(उत्तरार्द्ध)

अथ सुव्रतक्रियानामा षष्ठोधिकारः प्रारभ्यते ।

दोहा ।

वंदों सम्यग्ज्ञानयुत, श्रीगुरुचरन उदार ।
जा प्रसाद प्रगटै सहज, धरम क्रिया आचार ॥ १ ॥
जो सम्यक सहित जु बनै, व्रत संजम संबंध ।
तौ उपमा सांची फलै, सोना और सुगंध ॥ २ ॥
पूरब संचित पुन्यकी, मिली सु पूंजी आज ।
पाप रूप ऋण मेटि सब, करहु सु उद्यम काज ॥ ३ ॥
करै बुद्धिपूर्वक क्रिया, भलौ निमित्त मिलाय ।
तहां न निज कछु दोष लगै, यह निरवाध सु न्याय॥४॥
नमौं देव गुरु शास्त्र शुभ, मन वच तन लवलीन ।
जन्म जरा मृत दुख मिटै, प्रगटै निज निधि तीन ॥ ५ ॥
पूरब दोष निवारिकै, करै अगामी त्याग ।
वर्त्तमानमैं बचि चलै, सो ज्ञाता बड़भाग ॥ ६ ॥
पूर्व कर्मकौं कार्य है, आगैं कारणरूप ।
बर्त्तमानमैं त्यागियै, रागादिक अघकूप ॥ ७ ॥

कृत कारित अनुमोदना, इति विवेक उर माहिं ।
पापरूप कार्यनिविषै, मैं कारण हूं नाहिं ॥ ८ ॥
हेयवस्तुकौं त्यागिकैं, ज्ञेय पदारथ जान ।
उपादेयकौं ग्रहनकरि, कीजै निज कल्यान ॥ ९ ॥
भद्र सु संग गहो रहो, वक्रजननसौं दूर ।
जड़जनकी आपेक्ष तजि, सजि इत्यादि सहूर ॥ १० ॥
लहि दिढ पक्ष सुधर्मको, गहि बहुव्रत आचार ।
अंत अराधन मरन इति, त्रिविध शुद्धता सार ॥ ११ ॥
मिथ्यादरशन कुटिलता, और जु विषय निदान ।
तीनों शल्य तजै सजै, व्रत सु पुरुष व्रतवान ॥ १२ ॥

पंचव्रतवर्णन ।

परमअहिंसा सत कहै, गहै न परधन राग ।
ब्रह्मचर्य व्रत हित धरै, करै परिग्रह त्याग ॥ १३ ॥
हिंसादिक अघत्यागतैं, परम प्रशंसा होय ।
शल्यरहित व्रतसहित ते, व्रती कहावैं सोय ॥ १४ ॥
अज्ञानीजनकी क्रिया, बहु सु बोझ पाखान ।
सम्यग्ज्ञानीकी क्रिया, रत्नमाहात्म्य समान ॥ १५ ॥
शक्तिप्रमाण सु व्रत धरै, अधिक सु श्रद्धा भाव ।
लोपै नहीं सु शक्ति उर, बहु उत्साह प्रभाव ॥ १६ ॥
अनागार सागारतैं, धरम सु दोय प्रकार ।
जत्याचार प्रणाम करि, नमौं श्रावकाचार ॥ १७ ॥

पंचपापत्याग निरूपण ।

चौपाई ।

श्रीजिनभाषित क्रियाविधान । मन वच तन करि धर श्रद्धान ।
है जगमैं प्रमाद दुखमूल । तजिये सब अनादिकी भूल ॥ १८ ॥
हिंसा अनृत स्तेय विकार । अरु अब्रह्म परिग्रह भार ।
पंच प्रकार पाप इह थाय । सुनि निर्णय करि त्याग उपाय १९

हिंसालक्षण ।

दोहा ।

प्रमतयोगतैं प्राणका, व्यपरोपण जहँ होय ।
सो है हिंसा पाप इति, भेद लखौ भवि लोय ॥ २० ॥
पंद्रह भेद प्रमाद है, योग जु मन बच काय ।
प्राण सु दश इति भेद सब, आगम मांहि बताय ॥ २१ ॥

चौपाई ।

है प्रमत्त परमाद कषाय । योग क्रिया मन वचन रु काय ।
प्रमतयोगतैं प्राणवियोग । हिंसा अघ जानै भविलोग ॥२२॥
है प्रमत्त परमाद कषाय । योग अर्थ संबंध लहाय ॥
है विशुद्ध चेतना सु प्रान । व्यपरोपण हिंसा पहिचान॥२३॥

अडिल्ल ।

विना जतन रु विवेक विना जु प्रवृति करै ।
तिहं प्रवृत्तिमैं जीव मरै वा मति मरै ॥
निश्चयतैं तहँ हिंसा पाप लगै सही ।
विशद रूप इह निर्णय ग्रंथनिमैं कही ॥ २४ ॥

यत्नाचार विचार सहित सु प्रवृती करै ।
तहँ विधिपेख्यौ सूक्ष्म जंतु जो आपरै ॥
तिहं प्रवृत्ति मैं हिंसा अघ लागै नहीं ।
लागै तौ अति सूक्षम सहज मिटै सही ॥ २५ ॥

चौपाई १६ मात्रा ।

सदय हृदय जे यतनाचारी । ताकै पाप लगै नहिं भारी ।
मन वच तन सु प्रमाद निकंदै । सो नहिं कठिन करमसौं फंदै ॥

दोहा ।

अंतर ज्ञानोत्कृष्ट अरु, वाहिज चक्षु सुदृष्ट ।
दुविधि सु जतनाचार इति, सर्व कार्य महिं इष्ट ॥ २७ ॥
पर रक्षातैं आपनी, है रक्षा निःशंक ।
यहै सु रक्षा आपकी, लिपै न कर्म कलंक ॥ २८ ॥

अनृतलक्षण ।

झूठ तथा सांचौ जु कछु, है कुबचन दुखदान ।
सो सब बुरौ वचन तजौ, अनृत असद अभिधान ॥ २९ ॥

स्तेयलक्षण ।

विनु दीया परवस्तु नहिं, लीजै भविक सुजान ।
स्तेय पाप नहिं कीजिये, तजौ अदत्तादान ॥ ३० ॥

अब्रह्मलक्षण ।

कामकला जुत जुगल ज्यों, रमैं विकार उर आन ।
मैथुन पाप अब्रह्म इह, त्यागी जे बुधवान ॥ ३१ ॥

परिग्रह ।

भूमि धान्य चौपद दुपद, कंचन कुप्य सु जान ।
परमैं मूर्छा ममत इति, है परिगह अघखान ॥ ३२ ॥

पंचव्रत ।

हिंसा मृषा अदतधन पाप, तजि कुशील परिगह संताप ।
त्यागै पांचौ पाप कलेस, यहै सु पांचौ वरत विशेस ॥ ३३ ॥

हिंसापाप त्याग ज्यो करै, परम अहिंसाव्रत आदरै ।
असत बचन नहिं बोलै आप, कहै सु सत्यवचन निःपाप ३४

विना दिया परवस्तु न लेय, परम अचौर्य सु वरत धरेय ।
तजै कुशील अब्रह्म विकार, सजै सु ब्रह्मचर्य व्रत सार ॥३५॥

परतैं ममताभाव निवार, त्याग करै सु परिग्रह भार ।
इहविधि पांच पाप परिहार, धरै सु पांचौं व्रत हितधार ॥३६॥

पांचौ पाप त्याग इक देस, सोई है अणुव्रत उपदेस ।
पांच पाप तजि सर्वप्रकार, सो है पंच महाव्रत सार ॥ ३७ ॥

है इक इक व्रतकी भावना, पांच पांच विधि ज्यों पावना ।
यों पच्चीस भावना गहै, व्रत अतिनिर्मल स्थिर जो रहै ॥ ३८ ॥

श्रीजिनधुनि सुनि मुनिव्रत लियो, ते नर जन्म सफल निज कियो
अट्ठाईस मूलगुण सार, है मुनिव्रतविधि मूलाचार ॥ ३९ ॥

मुनिव्रतमहिमा अगम अपार, प्रणमौं निजहित कर सिरधार ।
अल्प शक्तिधर जे नर हौंय, श्रावकके व्रत धारैं सोय ॥ ४० ॥

श्रावकके बारह व्रत वर्णन ।

जिनशासनकी श्रद्धा लहै, बारहव्रत श्रावकका गहै ।
त्रसकी हिंसा त्याग करेय, बहुविधि हिये विवेक धरेय ॥४१॥

त्यागै असत वचन इस्थूल, चोरी पाप करै नहिं मूल ।
तजि परइस्त्री विषय विकार, परिगहका परिमाण सु धार॥४२

पूरब आदिक दिसा मझार, गमनतनी मरजादा धार ।
जिहँ प्रमाण मरजादा धरै, ताके आगैं गमन न करै ॥ ४३ ॥

देस नगर गृह गमन मझार, करै सु नियम काल अवधार ।
जेता काल नियम निज गहै, मरजादाके भीतर रहै ॥ ४४ ॥

अनरथ दंड महा अघखान, ताके पांच भेद पहचान ।
सो सब त्याग करै बुधवान, धरै सु हृदय विवेक महान ४५

सब सावद्ययोग परिहरै, तिहूंकाल सामाइक करै ।
आठैं चौदस हर इक मास, धरै चतुर परवन उपवास ॥४६

भोगुपभोग वस्तु परिमान, करै सु त्रिसनाकी अति हान ।
श्रीमुनिभक्ति हिये निज आन, विधिपूर्वक भवि देय सुदान४७

दोहा ।

अनुव्रतको उपकार कर, तीन गुणव्रत सार ।
मुनिव्रतकी शिक्षामयी, शिक्षाव्रत है च्यार ॥ ४८ ॥

हैं इन बारह व्रत तने, पांच पांच अतिचार ।
सो टालै निज शक्तिसम, पालै शुभ आचार ॥ ४९ ॥

अथ क्रियाकल्पवर्णन ।

अडिल्ल ।

गर्भान्वयकी क्रिया भेद त्रेपन कही ।
दीक्षान्वयकी क्रिया सु अडतालीस ही ॥
कर्त्रन्वयकी क्रिया सु सप्तप्रकार जू ।
कह्यौ सु आदिपुरान कथन विस्तार जू ॥ ५० ॥

गीता ।

क्रिया सु गर्भाधान आदिक भेद चौरासी भये ।
बहुरि सम्यकदर्शनादिक एक शत वसु वरनये ॥
देवबंदन आदि लैकैं, क्रिया भेद पचीस जू ।
आचारग्रंथनिमैं सु बहुविधि क्रियाकल्प शरीखजू॥५१॥

अन्यप्रकार त्रेपनक्रियावर्णन ।

कवित्त ।

बसु सु मूलगुन गहै जु विधिवत दिनभोजन पवित्र जलछान ।
बारह व्रत धारै रतनत्रय च्यार प्रकार देय शुभ दान ॥
साम्यभाव शुभ ह्रदय धरै निज द्वादस विधि तप शक्तिप्रमान।
इग्यारह प्रतिमा सु भेद गनि इति सब त्रेपन क्रिया सु जान॥५२॥

अडिल्ल ।

मूलगुणादिक कथन देश दिखलायकैं ।
बरज्यो सरब अभक्षरास समुझायकैं ॥
सो सब विधि विस्तार ग्रंथमैं पाइयै ।
अति सदोष भोजन सब त्याग कराइयै ॥ ५३ ॥

अभक्ष्यनिरूपण ।

चौपाई १६ मात्रा ।

जगमैं सूक्ष्म थूल बहु जीवा । तिहंकी उत्पति आदि सदीवा ।
लखैं प्रत्यक्ष सु श्रीगुरुज्ञानी । तिनका बचनागम परमानी ॥५४॥
जीवराशि जिहँ वस्तुनि मांही । तथा और बहु दूषन आंही ।
जिहं भक्षणमैं है अघ भारी । तजि अभक्ष्य भक्षन नरनारी ५५

पद्धड़ी ।

तजिये सब मास सहत सराव । याकौं जानौ जु निपट खराव ।
बर पीपर पाकर फल सु त्याग । ऊमर रु कठूमर त्याग राग ५६
जो वींधो अन्न लग्यो सु घून । सो है साक्षात सु मास खून ।
है निशि भोजन बहुविधि मलीन । सो त्याग कीजिये नर प्रवीन

निशिभोजन आरंभ अघ, त्याग सु व्रत सुखरास ।
एक वर्षमैं सहजही, है छह मास उपास ॥ ५८ ॥

पद्धड़ी ।

दिनमांहि देखिकैं भू बुहार । छानै जलतैं चौको सुधार ।
घूनो वींध्यौ ईंधन निवार । सोधो सब सामिग्री अहार ॥५९॥
नित स्नान पान अज्ञान मांहि । अनगाल्यो जल बरतै जु नांहि ।
नहिं उष्ण करै कबहूं सु भूल । है जल छाननकी क्रिया मूल॥६०॥

अडिल्ल।

अन्न जलादिक सोधै विनु भोजन बना ।
सो भोजन भवि जीवनिकौं खानौ मना ॥

शुद्ध अशुद्ध क्रिया क्यों एक समान है।
कहै निश अंध कहां दीपक कहां भान है॥ ६१॥

सोरठा।

उचित जो भोजन वस्त, उचित सु क्रिया पवित्रतैं।
बन्यौ सु अधिक प्रशस्त, सो भोजन भविजन ग्रहै॥६२॥

दोहा।

धरम विरुद्ध अहारतैं, धरम बुद्धि नहिं होय।
इति सुन्यायतैं शुद्ध विधि, ग्रहन करौ भविलोय॥ ६३॥
उत्तम धरम क्रिया विषै, ग्रहन योग्य जे वस्त।
सोई ग्रहन करै सु भवि, त्यागै और समस्त॥ ६४॥

पद्धड़ी।

सूरन गाजर अरु कँदमूल, सो है अभक्ष्य मति ग्रहो भूल।
वैंगन महुवा अंजीर आदि, तजिये सदोषफल पापस्वाद॥६५
कोवी सलगम लहसुन रु प्याज, त्यागीजे सरव अभक्ष आज।
नहि भंग धतूरा ग्रहन जोग्य, इत्यादिक सब तजिये अजोग्य॥
नहिं कंदमूल भखिये सु आप, परके खिलाइवेमैं सु पाप।
अश्वादिक पशु क्यौं हू न देहु, सबविधि विवेक निजहिये लेहु
तजि माखन लोन अग्राह्य जान, कस्तूरी हींग कबहूं न खान।
चे चरमाश्रित जल घीव तेल; सो सब त्यागीजे चाम मेल॥
गुलकंद मुरब्बा अरु अचार, सब संधानो तजिये अबार।
रस सड़्यो सोई सिरका कहाय, मति ग्रहन करौ अरक जु चुवाय

जामुन सहतूत तथा मकोय, वढहर कठहर उदँवर जु सोय ।
खइये नहिं दहि अरु गुड़ मिलाय, नहिं दही मांहि राई डराय।
जो घोरवरा कांजी कहाय, सो सविवेकी नर नहीं खाय ।
मूंगादि दुफाड़्यौ अन्न जोय,सो दही संग खावो न कोय॥७१

सोरठा ।

इह जु वस्तु संयोग, ततखिन लहै अशुद्धता ।
तातैं तजिवे जोग, ज्ञानी हृदय विवेक धर ॥ ७२ ॥

पद्धड़ी ।

जो उचित सु रसतैं उतरि जाय,रसचलित वस्तु सव त्याग थाय।
जा वृक्ष मूल तल मांस देय, ता तरुकौ फल जु अभक्ष हेय॥
तजिये सु कली कचनार आदि, तजि सागपत्र अंकूर स्वाद ।
केवड़ा केतुकी इत्यादि फूल, सो भक्षण मति कीजे जु भूल ॥

दोहा ।

पुष्प सु भोजन वस्तु नहिं, इह सुगंध हित म्रान ।
अन्न सु भोजन खाद्य है, स्वाद्य सु फल पहचान ॥ ७५ ॥

पद्धड़ी ।

जाका गुण दोष तनो न ज्ञान, सो सव अजान फल नहीं खान
वहुवीजा फल भखिये न कोय, मति ग्रहौ तुच्छफल हीन जोय॥
माटी नहिं भक्षण जोग्य वस्त, त्यागी जे विषभक्षण समस्त ।
जो है पाला पाथर[१] अकाश, सो सवही तजौ अभक्ष राश ७७

---

१ ओले ।

मति धरौ रसोई काल्ह हेत, बासी भोजन भवि त्यागदेत।
जो अमर्याद मय है अहार, ताके भक्षणमैं अघ अपार ॥७८

सोरठा।

उरिदआदिकी दाल, भीजै जेते समयमैं।
तेते पहिले काल जल, भिजोय मति अधिक समै ॥ ७९ ॥

दोहा।

भीजे पीछे शीघ्र ही, लेहु सुकारज माहिं।
भीज्यौ अन्न अति काललौं, धरै विवेकी नाहिं ॥ ८० ॥
मूंग मोठ जल भेय करि, अंकूरा उपजाय।
इति अंकूराअन्नकौ, सविवेकी नहिं खांय ॥ ८१ ॥

पद्धड़ी।

मैदानी सड़ जो उठे खमीर। सु जलेबी ग्रहन न करौ वीर।
जो दही न नीके जमौ होय। वा फट्यौ दुग्ध मति ग्रहौ लोय ॥
गौ भैंसी दुग्ध पवित्र होय। अथवा छेरीका लीन होय।
अरु उटिनी भेड़ी पशु अनेक। सो दुग्ध त्याग धरिये विवेक ॥
थाली आदिक इक पात्र माहिं। बहुजन जु लार[1] जीमैं जु नाहिं।
जूठो भोजन तजिये सु मित्र। सजिये सब विधि किरिया पवित्र
नर नीच कुकरमी दुष्टदोष। ते भोजन सामिग्री सदोष।
इत्यादिक सरब विरुद्ध टार। वा संसय युत तजिये अहार ८५

१ साथ

अथ अंतराय वर्णन ।

हिंसा देखै वा सुनै कान । अथवा उपसर्ग पुरुषमहान ।
इत्यादि धर्ममैं हानि थाय । तहँ भोजनमैं है अंतराय ॥ ८६ ॥
कहुं विष्ठा मांसादिक गिलान । देखै वा नाम सुनै सु कान ।
वा गमी मृतक कुखबर सुनाय । तहँ भोजनमैं है अंतराय॥८७॥
बहु चीनी खांडादिक गलाय । तसु नर पशुवत आकृति कराय ।
सो भक्षन जोग्य नहीं सु बीर । यामैं है पाप सु अति गंभीर ८८

दोहा ।

नर-पशुवत आकार रचि, ताहि विगाड़ै कोय ।
तहं अवश्य अघ लागि है, इति निश्चय उर जोय ॥८९॥

पद्धड़ी ।

नरियर कुहँड़ा केइ फल प्रचंड । हिंसाथलमैं ज्यों करैं खंड ।
ताको भक्षण है घोर पाप । सो सब संसर्ग तजौ जु आप ॥९०॥
मिथ्यात क्रिया करि अशुभ होय । ताकौं कहुं शुभ मानै जु कोय ।
यह दरशनमोह उदय कुरीत । बहु करै जीव उलटी प्रतीत९१

चौपाई १६ मात्रा ।

प्रथमहि बाह्य अशुद्ध कहावै । बहुरि अभ्यंतर मुखमैं जावै ।
निपट निकट प्राणनिके ठांही । सो अभक्ष्य पाप क्यों नाहीं॥९२॥
पापमयी भोजन जे करते । ते नित पापबुद्धि हिय धरते ।
विषयासक्त ज्ञानके हीना । हैं रसनावश ज्यों जल मीना ॥९३॥

सोरठा ।

तनिक स्वादके काज, भक्ष्याभक्ष्य विवेक तजि ।
पापभार सिर साज, घोर कुगति दुख क्यों सहै ॥ ९४ ॥

मांसादिकका त्याग, च्यारौं कुलमैं चाहिये ।
शुभ मारग अनुराग, जातैं भौ भौ अघ कटै ॥ ९५ ॥

दोहा ।

कछू अशुद्ध स्पर्श तन, बाह्यमात्र है जोय ।
तातैं सु मुख अंतर ग्रहन, अधिक दोषमयि होय ॥ ९६ ॥
अन्न रु ईंधन सोधि सब, घूनो वींध्यौ टार ।
छानि सलिल भू शोधि इति, आहार शुद्धता च्यार ॥९७
सरब क्रियामैं मुख्य है, भोजन क्रिया प्रशस्त ।
तासु शुद्धता विनु वृथा, अन्य क्रिया जु समस्त ॥ ९८ ॥
मुख्य क्रियामैं हानि करि, गौण अमिल प्रतिपाल ।
प्रगट्यौ कलि पाखंड बहु, लोक रिझावन चाल ॥ ९९ ॥
खाद्य अखाद्य विवेक विनु, खाद्य लंपटी भ्रष्ट ।
कठिन पाप बांधै सु निज, पूर्व पुन्य करि नष्ट ॥ १००॥

अड़िल्ल ।

ज्यों सु भक्ष्य भोजनतैं नहिं त्रिसना गयी ।
तब अभक्ष्य भक्षनकी उर वांछा भयी ।
फिरि त्रिसना नहिं मिटै तौ लंपटि क्या करै ।
विषय अंध ज्यों कुगति कूपमैं जा परै ॥ १०१ ॥
जहँ सु जीव बहु सूक्षम उत्पति मानिये ।
तथा जु हीन क्रिया करि निपज्यौ जानिये ।
अथवा और हु बहुप्रकार दूषनमयी ।
सो सब वस्तु अभक्ष त्याग इति बरनयी ॥ १०२ ॥

दोहा।

सड़ै गलै भूवा लगे, फफँदि उठै जु खमीर।
सूक्ष्म जीवकी राशि तहँ, इति लखि दोष गंभीर॥ १०३
जो दुःस्वाद दुरगंध वा, अनुचित आकृत ग्लान।
अप्रशस्त इति वस्तु सब, है अग्राह्य सु जान। १०४॥
तजिवे जोग्य जु वहुत हैं, गहिवे जोग्य जु अल्प।
सो सब ज्ञान विशेषमैं, दरसै स्वहित विकल्प॥ १०५॥
कहुं सु काल मरजादकौं, उलंघि होय अपवित्र।
कहुं विरुद्ध संयोग करि, होय अशुद्ध विचित्र॥ १०६॥
मूलहि वस्तु अशुद्ध कहुं, कहुं संसर्ग अशुद्ध।
खानपान तजिये सुधी, इत्यादिक सविरुद्ध॥ १०७॥
त्याग सु दोय प्रकार है, यम अरु नियम विधान।
तजिये जन्म पर्यंत वा, तजि कछु काल प्रमान॥ १०८
जे केइ वस्तु तने नहीं, होय सकै यम त्याग।
तहँ कछु काल सु नियम करि, तजिये तसु अनुराग१०९
वर्तमान जे लब्धि तथा, आगे संभवरूप।
विषय वस्तु त्रिसना घनी, त्यागभाव जु अनूप॥ ११०॥

पद्धड़ी।

साबुन सज्जी जो नोन काम। है नील तथा सोरा गुदाम।
वहु हिंसा वहु आरंभ पाप। सो त्यागी जे व्यापार थाप १११

१ सफेदी लगना।

मति करो सु चीनीका गुदाम। बहु अन्नराशि संचौ न धाम।
जु अनाजतने व्यापार कीन। ताकौ परिणाम जु रहै हीन॥११२
चावुक पिंजरा बहुजाल फाँस। हिंसादि पाप उपकरण रास।
बंदूक आदि हथियार कोय। परकौं मति मंगनी देहु सोय॥
जो है अघ करमी नीच जात, ताका संसर्ग न करौ भ्रात।
देना लेना आदिक व्योहार, मति करो नीच सँग सरोकार॥
ईंटा चूना भट्टीके हेत, परकौं जु रुपैया मदत देत।
पहिले जु वादनी देय कोय, सो पापकर्म भागी जु होय ११५
तातैं अघकरमनिके जु मांहि, कहुं अधिकारी हूजे जु नांहि।
जो उचित वस्तुको होय काम, लीजै जु मोल दीजै सु दाम॥
बहु हिंसक पशु पालै जु कोय, सो हिंसा अघभागी जु होय।
बहु हिंसकके रहिवेके हेत, सविवेकी निजगृह नहीं देत११७
पक्षी पिंजरे मति करौ वंद। यह है प्रत्यक्ष जो पापफंद।
इत्यादि विवेक सु हिये पूर। त्यागीजे पाप प्रसंग दूर॥११८॥

दोहा।

चक्षु श्रोत्र निज विषयवश, परकौ फंद लगाय।
तहां पुन्यको छल करै, इह सु कहांकौ न्याय॥ ११९॥

पद्धड़ी।

आतसबाजी बारूदकार। इह है जु रिवाइज अघभंडार।
बहु क्षेत्रतने सब जीव जंत। प्रजुलित अगिनीमैं होय अंत १२०
निज नेत्रइंद्रियका विषय आन। अभिमानादिक वस कुमति ठान
बहु करै अनर्थ जु अगिनि ख्याल। तहँ घने जंतुका होय काल॥

दोहा।

घूरा कूरा जमइ करि, अगिनि लगावै जोय।

वन दाढा दव देय जो, पूरा पापी सोय ॥ १२२ ॥

पद्धड़ी।

वरपाऋतुमैं निस दीप देख। जु पतंग जंतु जरते विसेख।
ताकी अज्ञान चेष्टा विचार। रक्षा उपाय करि बहु प्रकार १२३
बहु शोकादिकवश तिय अज्ञान। करै मोहअंध निज प्राणहान।
अघरूप यहै अपघात रीत। ज्यों है विराग तप करहु नीत १२४

दोहा।

लहै जु तीव्रकषाय वश, प्राणहान अज्ञान।

कहै धर्म अपघातमैं इति कलि प्रवृत्ति मलान ॥ १२५ ॥

पद्धड़ी।

परमत देवी पूजादि माहिं, जो कहुं भाजी बैनो बँटाहिँ।
सो भक्षण भूल न करौ भ्रात, यह है सदोप किरिया मिथ्यात॥

दोहा।

पुष्पाक्षत कहि आसिका, अन्यमती जो देय।

सो सम्यकदृष्टी पुरुप, भूल कभूं नहिं लेय ॥ १२७ ॥

है मिथ्या किरिया करम, अकल्यान दुख मूल।

ताहि गहै अरु सुख चहै, लहै मूलपर मूल ॥ १२८ ॥

पद्धड़ी।

अज्ञान न जानै पशू पीर, गौ बछराको कोमल शरीर।
निरदय दागै लोहा धिपाय, इह दुःप्रवृत्ति कलि मांहि थाय॥

---

१ तपाय।

मिथ्यात क्रिया करि मोहअंध, अति अशुभ करमका करै बंध।
तासौं अपना कहुं कहै कल्यान, विषकों अमृत मानै अज्ञान॥
गोमूत्र सहत सबविधि मलीन, यामैं बहु जिव उतपत महीन।
सो औषधादि हित नर प्रवीन, निज मुखमैं मति दीज्यो कुलीन

दोहा।

मधुमाखीकौ वौण विट, ग्रहनकाल बहुघात।
जीवरासि उत्पत घनी, सहत दोष इति ख्यात॥ १३२॥
महत दोष मधु सहतमैं, कहत न आवै पार।
याहि चहत सो अघ गहन, लहत दीर्घ संसार॥१३३॥
अन्न सु भोज्य प्रसिद्ध 'जग' तासु त्याग जु अनीत।
गहै गरिष्ट अभक्षफल, कुतप मार्ग विपरीत॥ १३४॥

पद्धड़ी।

है हाड संख मुखमैं न देहु, मति रोम चरमको वस्त्र लेहु।
जहं याका कछु संसर्ग होय। भोजन सामिग्री तजौ सोय॥१३५
गुडसंग तमाखूकौं मिलाय। तसु कूट धरै बहुविधि सड़ाय।
तहँ सूक्ष्म जीवकी रासि खान। अवमय है हुक्का धूमपान १३६
यह हुक्का मति पीजै कुलीन। है धूमपानसौं मन मलीन।
है हुक्काका संसर्ग जाहि। तसु धरम बुद्धि उपजै जु नाहिं १३७
तालादिक तरुरस द्रवै जोय। सो अतिअशुद्ध अग्राह्य होय।
तामैं जु सूक्ष्म बहु जीवरास। अरु नसा दोष दुरगंध वास १३८
जूआँ खटमल मारौ न कोय। वीछू सर्पादिक जीव जोय।
तासौं तुम आप जु रहौ दूर। कहुं तासु दूर कर कर सहूर॥१३९

दोहा ।

पशु अज्ञान चेष्टा विविधि, निरखि सु नर सज्ञान ।
क्षमाभाव विस्तारि उर, कर रक्षा तसु प्रान ॥ १४० ॥
जहां क्षमादिक धर्म नहिं, नहीं हिताहित ज्ञान ।
पुन्यपाप समुझे विना, नर तिरजंच समान ॥ १४१ ॥

पद्धड़ी ।

अश्वादिक पशुको अंड दोय । ताकौं जु विगाडैं मनुष कोय ।
पर अंग भंग जे करै मूढ । ताकौं लागै अति पाप गूढ़ ॥१४२॥
वाघंवर अरु मृगछाल नाम । यह है प्रतक्ष जो पशु चाम ।
सो कोउ प्रकार नहिं होय शुद्ध । याका संसर्ग महा विरुद्ध ॥
कहुं कौड़ी सीपी जीव जार । तसु चूना करि वेचैं वजार ।
यह चूना है अति पापखान । सो नहिं लगाइये निज मकान १४४

दोहा ।

वहु प्राणिनकौं जारि करि, ताका हाड वटोर ।
इह चूनातैं घर उठै, सो घर है अघघोर ॥ १४५ ॥

विशेप विचार ।

चौपाई १६ मात्रा ।

पहिले पापक्रियातैं आवे । आय प्रत्यक्ष अशुद्ध कहावै ।
फिरि चलिहै हिंसा व्यवहारो । सो त्रिकाल मति ग्रहन विचारो॥
जगमैं ज्यौं वहु अघ आरंभा । है यामैं नहिं कछुक अचंभा ।
सो संसर्ग सर्व विधि त्यागै । कोउ कारण करि पाप न लागै ॥

गीता ।

यह जगतजालविटंबना वहु अघमयी जानौ सही ।
यामैं जु वहु मिथ्यात्व वहु आरंभ हिंसा वनि रही ॥
सव ही अत्यागी पुरुप जगमैं त्याग विरले करत हैं ।
डूबें अनंतभव जंत जगमैं संत विरले तरत हैं ॥ १४८ ॥

दोहा ।

जाहि जमीदारी सु निज, गांव तालुकादार ।
तहां नदी तालादि जल, जंतु सु रक्षा सार ॥ १४९ ॥
मीनादिक जलजंतुकौं, वाधा करै न कोय ।
इह सु हुकुम परधानपणे, धर्मदुहाई होय ॥ १५० ॥
मिटि है जाके हुकमसौं, वहु अनरथ जिहँ ठौर ।
सो जु उपाय नहीं करै, लगै ताहि अघ दौर ॥ १५१ ॥

पद्धड़ी ।

जहं चाम डोल वहु नीच जात, सो कूप नीर लीजै न भ्रात ।
जल उष्ण किये कूटे जु धान, सो चांवल चिउरा है अखान
आमिषभक्षी जे नीचजात, ताका भोजन लीजै न भ्रात ।
अपना भाजन दीजै जु नाहिं, मति खान पान कर एक ठांहि
जब नारी पुष्पवती जु थाय, सो च्यार दिवस न्यारी रहाय ।
पंचमदिन शुद्ध सु करि सिनान, उत्तम कुल त्रिया सु क्रियावान॥

दोहा ।

दंपतिक्रियाविशेषमैं, जलमाटी लहि शुद्ध ।
छाने जल सु स्नान करि, चीर बदलि परबुद्ध ॥ १५५॥

पद्धड़ी ।

दिनकौ जु सर्वदा त्याग काम, निश आदि अंत तजि दोय जाम
चहुं पर्वनि प्रति दो दो सु रात, तजिये कुशील दंपति विख्यात

व्रततिथि ।

आठैं चौदस व्रत दिवस मान। छह दंड उदयतिथि व्रत प्रमान ॥
यातें तिथि जहँ कछु घाट होय। तहँ पहले दिन व्रत करो लोय ॥

दोहा ।

तीन मुहूरत उदय तिथि, व्रतदिन लेहु विचार ।
यातैं कमती तिथि तहां, पहिलेदिन व्रत धार ॥ १५८ ॥

दोहा ।

सामायिक अस्नान पुनि, पूजन अरु आहार ।
दंपतिसंगम मौन धरि, करि लघुदीर्घ निहार[1] ॥ १५९ ॥

पद्धड़ी ।

तजि गर्भवती इस्त्रीप्रसंग। यह है अति अधम क्रिया अनंग ॥
इत्यादि विवेक गहो सुबुद्ध । सब विधि गहिये गृहधर्म शुद्ध ॥
बालक सु जन्म उत्साह रीत । जिनपूजन दानादिक पुनीत ॥
श्रीजिनशासन आश्रय सु लेय । धरिये सु नाम बालक तनेय ॥

नवीनगृह ।

जहं नयो सु गृहको नींव देय। तहँ मंगल जिनपूजन करेय ॥
जब प्रथम हिं करै सु गृह प्रवेस । जिनबिंब पूजि उत्सव विशेस ॥

---

१ मलमूत्र.

यह जगत सु जन नाना प्रकार। है श्रीजिनशासनतैं उद्धार।
है यही एक कल्याण ठौर। या विनु कहुं नहिं है शरण और॥
जहँ स्त्री पुरुष दोऊ प्रवीन। तहँ कोउप्रकार नहिं क्रिया हीन।
सबविधि मलीन व्यवहार टार। उज्जल सु रीत गृहधर्म धार॥

दोहा।

उचितरूप गृहकार्यमैं, होय जु कछु व्यापार।
तहाँ प्रथम जिनभक्ति करि, परम मंगलाचार॥ १६५॥
जा गृह स्त्री गुणवती, सती पतिव्रत वान।
ता गृह शुभ आचरण अति, मिल्यो मेल कल्याण॥१६६॥
चूल्हा चक्की ओंखली, तथा बुहारी देत।
त्रस हिंसा सु बचाय गृह, कार्य विवेक समेत॥ १६७॥
घूनो वींध्यौ अन्न अति, चूनवीनके वीर।
कूटै पीसे घर त्रिया, इह शिक्षा गंभीर॥ १६८॥
घुने अन्नकौं पीसतैं, वहु प्राणिनको नास।
पापमयी सो चून है, मिल्यो रुधिर अरु मांस॥ १६९॥
नारी दासी दासपै, गृहस्वामी जहँ आप।
धरै हुकम ताकीत अति, तहाँ क्रिया निष्पाप॥ १७०॥
जाकै हुकम सु गृह क्रिया, प्रवृति शुभाशुभ थाय।
ताकौ पुन्य रु पाप इति, है निरवाध सु न्याय॥ १७१॥

जलगालन विधि।

दुहरे छन्ने छानि जल, फेरि सु छन्ना चीर।
धोय डारि जल तालमैं, जहांसुं आयो नीर॥ १७२॥

केवल छान्यौ दो घडी, प्रासुक पहर सु दोय ।
तीव्र उष्ण वसु[1] पहर लों, सलिल सुद्धता होय ॥ १७३ ॥

सोरठा ।

छाने जलके मांहि, लौंग मरिच कछु कटुक दे ।
सो प्रासुक ठहराहिं, दोय पहर मरजाद तसु ॥ १७४ ॥

दोहा ।

विधिपूर्वक जल छानके, ततखिन उष्ण करेहु ।
अनछान्यौं नहिं उष्ण करि, नहिं चूल्हेमहिं देहु ॥१७५॥

पद्धड़ी ।

आम्रादिक वृक्ष जु हस्यो होय, ईंधनके हित काटौ न सोय ।
सूखौ ईंधन लीजै विचार, घून्यौं बींध्यौ अघरीत टार ॥ १७६
मोरी आदिक जे सरद ठांहि, तहँ उष्ण सलिल छेपिजे नांहि ।
इत्यादि सु क्रिया रहस्य जान, तजि मूढभाव ह्वै सज्ञान१७७॥
गृहभूमि मांहि गहिरो गँभीर, सो पयखाना मति करो वीर ।
है वाहिज भूमि सु भलो काम, वा उठे सु नित गृह साफ ठाम॥
लघुबाधामैं लीजे सु नीर । पुन दीरघबाधामैं गँभीर ।
जल अरु माटी ले क्रियावान । तन चीर वदल जल छान स्नान॥

दोहा ।

पश्चिम सन्मुख दाँतवन, पूरव स्नान पवित्र ।
उत्तर सन्मुख चीर गहि, उचिताचार सु मित्र ॥ १८० ॥

---

1 आठ ।

पद्धड़ी।

सिर शिखामात्र धरिये सु वार। मति अधिक केश सिर धरो भार।
अरु नहिं धरिये दाढी वढाय। इत्यादि भलो सु व्रत लहाय१८१

दिनकौं निद्रा मति लेहु भ्रात। अरु तजि निद्रा संध्या रु प्रात।
वहु निद्रा पापमयी सु जान। या वस भव उभय कल्याण हान॥

हैं केतेक शूद्र स्परसवाद। केते अस्परस हजाम आदि।
अस्परस शूद्र कहुँ भिड़े आन। तन चीर वदल जल छान स्नान॥

नरकौ सु प्राण जव होय अंत। तव देहक्रिया चहिये तुरंत।
तसु सूतक द्वादश दिन सु जान। अरु जनमतने दश दिन वखान॥

त्रय पीढीलों जु कह्यो समान। आगैं क्रम हान सु विधिप्रमान।
सूतक पातककी क्रियानेक।सो वृहत ग्रंथमैं विधि प्रत्येक १८५

जिनमंदिरमैं मति करहु शोक। यामैं दृढ वँधै कुकर्म थोक।
सवविधि विमोह परिणाम रोक। सज्ञान होय दीजे सु धोक॥

मति करो कहूं विश्वासघात। पर चुगलीकी वोलो न वात॥
झूठी साखी मति देहु ग्वाह। है नीति उलंघन पाप राह॥१८७

नारीको नहिं दूजौ विवाह। एकहि विवाह है धर्मराह।
गहिये सु धर्मकी रीत सार। सव विधि कुशील व्यभिचार टार॥

मदिरा अरु मांस सिकार पाप। परइस्त्री चोरी तजो आप।
जूवा वेश्यालंपट निवार। ये सात श्वभ्रदूती अवार॥ १८९॥

१ नरक।

दोहा ।

परइस्त्री चोरी बुरी, मदिरा मांस सिकार ।
जूआ वेश्या व्यसन अघ, भार अधोमुख द्वार ॥ १९० ॥

पद्धड़ी ।

जो राजद्वारतैं है विरुद्ध । सो रोजगार मति करहु बुद्ध ।
कहिये नहिं सभा अयोग्य वात । गहिये सु न्यायमारग विख्यात॥
वहु भेड़ा आदिक पशु अवोध । सु कराय परस्पर तिन्हें क्रोध ।
दुहुंकौं भिड़ाय देखे लडाय । यह कौतूहल है अघ उपाय १९२

दोहा ।

नहि छेरी रखिये सु निज, नहीं कवूतर पाल ।
इत्यादिक सु विवेक धरि, करिय न अघ जंजाल ॥१९३॥

पद्धड़ी ।

वहु गंजीफादिक फरद मेल । चौसर सतरंज जु नरद खेल ।
खोटे ख्यालनमैं उमर खोय । फिरि पछतावै जव कुगति होय ॥
जिह क्षेत्रमांहि जिनभवन नांहि । नहिं साधरमी सतसंग आंहि ।
नहिं वक्ता श्रोता शास्त्ररीत । तहँ नहिं वसिये सज्जन पुनीत ॥
कहुं रोगादिक वेदन जु थाय । तहँ धर्म राखि कीजे उपाय ।
जामैं निज धरमकी हानि नांहि । सो उचितरूप औषध कराहि ॥
यद्यपि कुलजात भलो जु कोय । जो जिनशासनतैं वाह्य होय ।
ताको जु पकायो अन्न जोय । सो है अग्राह्य रसोइ सोय १९७

दोहा ।

अन्यमती सु स्पर्श करि, जु कछु रसोई होय ।
सम्यकदृष्टी सुजनके, ग्रहन जोग्य नहिं सोय ॥ १९८ ॥

पद्धड़ी।

जैनीवरकौं कन्या सु दान। सोई है सन्मारग कल्यान।
यह कीजै आप सु धर्मनेम। याहीमैं है सब कुशल क्षेम॥१९९

सोरठा।

मिथ्यातीके धाम, निजकन्या व्याहै कुधी।
ते अति अधम जु काम, भव्य! भूल नहिं कीजिये॥२००॥

पद्धड़ी।

दिनहीकौं कीजै विधि वरात। दिनहीकौं बहु ज्योंनार पांत।
यह उत्तमकुलकी क्रिया ख्यात। कवहूं नहिं करै वरात रात॥
जद्यपि कुल जात भलौ जु कोय। जो जिनशासनतैं वाह्य होय।
तासौं मति जिनपूजन कराय। मति शास्त्र तासुके घर धराय २०२

दोहा।

अन्यमतीके गृह कोऊ, जिनवानी जु धरेय।
ताहि लगै अपराध अति, भवि नहिं भूल करेय॥२०३॥

पद्धड़ी।

कहुँ आपसमैं जैनी जु लोग। चलिये अपनौ कुल धरम जोग।
जिह तिहं प्रकार करिकैं सुयत्न। बहुविधि सम्हाल धरि धर्मरत्न॥
बहु धरमसंघका करि सम्हाल। चलिये शिवमारगकी सु चाल।
ज्यौं उज्जलजस सु प्रभाव अंग। हो मारगथिरता सुख अभंग॥
जिनयज्ञ प्रतिष्ठादिक महान। तहँ है अति अधिक प्रधानदान।
जिनमत परमत जग जीव सर्व, कीजै संतुष्ट जु देय दर्व॥२०६॥

दोहा ।

परम धरम उत्साहमैं, करि सवका सनमान ।
ज्यों निरवाध सु जस बँधै, सधै सरव कल्यान ॥ २०७ ॥

पद्धड़ी ।

परसंपति देख न करि निदान । यामैं संसार वधै महान ।
जु निदानरूप लछिमीके मांहि । अति लुब्ध मुग्ध ले कुगति ठांहि
पग धरिये भव्य सु भूमि देख । है यामैं निजपर हित विशेख ।
अंतर सु ज्ञान बाहिज जु दृष्ट । यह सरव जायगां है सु इष्ट ॥

दोहा ।

गृह आरंभ प्रवृत्तिमैं, गहौ सु यतनाचार ।
ज्यों निजपाप नहीं लगै, लगै तौ अल्पप्रकार ॥ २१० ॥
अल्प वहुत्व सु भेदकौं, नहिं मानै मतिमूढ ।
तहँ सु तत्त्व कछु नहिं सधै, वधै भरमतम गूढ ॥ २११ ॥

चौपाई १६ मात्रा ।

नीतिविषयमैं है अघ थोरा । है अनीति अघ कठिन कठोरा ।
सो कैसें कहि एक समाना । कहं परवत कहँ राईदाना ॥ २१२ ॥
वाहिज भली क्रिया आचरते । अंतर तत्त्ववोध हिय धरते ।
जे 'जग' पापतापतैं डरते । ते जु सहज भवसागर तरते २१३

इति श्रीधर्मरत्नोद्योतग्रन्थे सुव्रतक्रिया नामा षष्ठोऽधिकारः समाप्तः ।

अथ द्वादशानुप्रेक्षा नामा सप्तमोऽधिकारः प्रारभ्यते।

दोहा।

श्रीगुरुचरन प्रणाम करि, शुद्धभाव विस्तार।
द्वादश अनुप्रेक्षा सुवुध, चिंतै वारंवार ॥ १ ॥

अनित्यानुप्रेक्षा।

स्थिरीरूप नहिं जगत मैं, तन धन यौवन गेह।
अहो कहो क्यों कीजिये, अथिर वस्तुतैं नेह ॥ २ ॥
जुस्यो जोग ज्यों हाटकौ, घाट वाढकौ मेल।
नदी नाव संयोग ज्यों, त्यों कुटंवकौ खेल ॥ ३ ॥
वड़े वड़े नृपकौं जहाँ, रह्यो न लक्ष्मीमूल।
सो लक्ष्मी संचय विखै, इतर जना रहे भूल ॥ ४ ॥
छल वलतैं थिर नहिं रहै, अथिर जगत व्यवहार।
काल चक्र पल पल चलै, चल चल करै पुकार ॥ ५ ॥
चेतनराय सचेत है, तजौ जु गहला सैन।
इहां नगारा कूंचका, वाजतु है दिन रैन ॥ ६ ॥

अशरणानुप्रेक्षा।

अंतसमय या जीवकौं, कोइ नहिं शरण सहाय।
रहै न इक क्षण अधिक ज्यों, कीजै कोटि उपाय ॥७॥

आयुकर्मके अंतकौ, है जु कष्ट अनिवार ।
वैद्य राज धन असुरगण, कोउ न बचावन हार ॥ ८ ॥
गहिरी खाई प्रबल गढ, अति उतंग नभ कोट ।
इत्यादिककी ओट गहिं, बचै न जमकी चोट ॥ ९ ॥
इह अनादि जग कष्टमैं, यही एक तदवीर ।
रतनत्रयको शरण लंहि, मिटै जन्म मृतु पीर ॥ १० ॥

संसारानुप्रेक्षा ।

द्रव्य क्षेत्र अर काल भव, भाव भेद विस्तार ।
पंच परावर्त्तन यही, यही पंच संसार ॥ ११ ॥
उलट पलट ज्यों नटकला, धरै भ्रमन संसार ।
कठिनदुःख दुष्कर्मवश, सहै जु वारंवार ॥ १२ ॥

एकत्वानुप्रेक्षा ।

चहुंगतमैं यह आतमा, भ्रमै अकेला आप ।
आप शुभाशुभ भावतैं, संचै पुन्य रु पाप ॥ १३ ॥
आपु हि भोगै करमफल, आपु हि पश्चात्ताप ।
करम भरम अघ त्यागकैं, शुद्ध आपुही आप ॥ १४ ॥

अन्यत्वानुप्रेक्षा ।

वहु धन गृह संपत तथा, वहु कुटुंव परिवार ।
ये सव निजतैं अन्य लखि, परखि सु निजगुण सार ॥१५॥
खिन पूरै खिनमैं गलै, देह सु पुग्गलखंध ।
याके संग सु जीवकौं, मिल्यौ अमिल संवंध ॥ १६ ॥

जद्यपि संग अनादिको, तद्दपि अमिल मिलाप ।
चेतन चेतनता धरै, जड़पै जड़ता छाप ॥ १७ ॥
व्यवहारे इक भेस है, निश्चय जुदा प्रदेश ।
जीव ज्ञानगुणमय सदा, तन जडरूप विशेस ॥ १८ ॥

अशुच्यनुप्रेक्षा ।

सप्त धातु दुरगंधमय, महा अशुचि घिनमूल ।
ऐसी देह दशा विषै, मित्र रहे तुम भूल ॥ १९ ॥
वाहिज रमक चमक तदपि, अंतर गमक मलीन ।
इति पुदगलकी दमकमैं, मूर्ख रहै लवलीन ॥ २० ॥
जाहि मिले शुचि वस्तु हू, अशुचिरूप होजाय ।
ऐसे अशुचि शरीरमैं, वृथा रहे जु लुभाय ॥ २१ ॥
विधना चतुर विराग हित, नरतन रच्यो असार ।
मनुष मूढ चेतै नहीं, कठिन सु 'जग' व्यवहार ॥ २२ ॥

आस्रवानुप्रेक्षा ।

काय वचन मन योग वश, आस्रव कर्म प्रवेश ।
ज्यों सछिद्र नौकानिमैं, सलिलागमन विशेस ॥ २३ ॥
मिथ्यादरशन अरु अव्रत, तथा प्रमाद कषाय ।
आस्रवका कारण विविध, योग जु मन वच काय ॥ २४ ॥
शुभ योगनिके निमिततैं पुन्यास्रव जो होय ।
अशुभ योगके निमित बहु, पापास्रव विधि जोय ॥२५॥
मिथ्यात्वादिक हैं जहाँ, आस्रवतने जु हेत ।
कठिन बंध विधि है तहाँ, थिति अनुभाग समेत ॥ २६ ॥

केवल योग निमित्ततैं, जहां सु आस्रव होय ।
तहाँ बंध विधि है नहीं, भ्रमै न 'जग' मैं सोय ॥ २७ ॥

संवरानुप्रेक्षा ।

गुप्ति समिति वरधर्म धर, अनुप्रेक्षा चित चेत ।
परियहजय चारित्र लहि, यह छह संवर हेत ॥ २८ ॥
है संवर सुखमय महा, जहँ 'जग' अघ नहिं लेश ।
गुप्ति समिति धर्मादितैं, करै न करम प्रवेश ॥ २९ ॥

निर्जरानुप्रेक्षा ।

श्रीजिनभाषित तप तपैं, सम्यक रीत पुनीत ।
करम निर्जरा होय तब, होय जीवकी जीत ॥ ३० ॥
कंचन पावकतापतैं, दहै कीट मल रीत ।
तपबल कर्मकलंक दहि, लहि जु जीवकी जीत ॥ ३१ ॥

लोकानुप्रेक्षा ।

जहां द्रव्य अवलोकिये, लोक कहावै सोय ।
लोक सीस जगदीस पद, नमों जोरि कर दोय ॥ ३२ ॥

कवित्त ।

राजू एक दूसरे भू लों, सप्तम लों छै राजू जान ।
इक राजू पाताल अंत इति, मेरुतलैं सब सात बखान ॥
दोय जुगल सुर त्रय राजूमैं, छह जुग त्रय राजूमैं मान ।
कल्पातीत इक राजू ऊंचौ, चौदह राजू लोक प्रमान ॥ ३३ ॥

दोहा ।

सात सु राजू मेरुतल, ऊपर सात प्रमान ।
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुषसंठान ॥ ३४ ॥

कवित्त ।

सात तलैं फिरि क्रमतैं घटिकै मध्यलोक इक राजू मान ।
बढ्यौ ब्रह्मढिंग पांच भयो घटि, उपरि अँत इक राजू जान ।
इह विधि पूरब पश्चिम है, अब उत्तर दक्खिन कहौं बखान ।
लोक तलैं ऊपरलों राजू, सात सात है सर्वस्थान ॥ ३५ ॥

दोहा ।

अधः एकसौ छ्यानवै, ऊर्द्ध शतक तेताल ।
घनाकार सब लोकका, तीन शतक तेताल ॥ ३६ ॥
मेरु मूलतल क्षेत्र सब, अधोलोक परिमान ।
मेरुमूल ऊपर सरब, क्षेत्र ऊर्द्ध इति जान ॥ ३७ ॥
साढे पंद्रह पूर्व है, तेतौ पश्चिम ओर ।
सात तलैं इक ऊपरैं, सब उनचालिस जोर ॥ ३८ ॥
है चौदह दक्खिन दिशा, चौदह उत्तर हेर ।
तलैं सात सत ऊपरै, बियालीस चौफेर ॥ ३९ ॥
है चौफेर जु लोकके, बातवलय शुचिरूप ।
बेढि रह्यो तरु छाल ज्यौं, शोभा धरै अनूप ॥ ४० ॥
ऊंचौ मेरु प्रमाण है, मध्यलोककी दौर ।
ता ऊपर है स्वर्ग पुनि, अधो सप्त भू ठौर ॥ ४१ ॥

चित्रामैं इक सहस है, निन्यानवै उतंग ।
चालिस योजन चूलिका, सोहै मेरु सु रंग ॥ ४२ ॥
लख योजन चालिस अधिक, ऊंचौ मेरु महान ।
एता ही ऊंचो लखौ, मध्यलोक परिमान ॥ ४३ ॥
अधोलोकमैं है सही, सप्त भूमि विस्तार ।
ऊर्द्ध लोकके शिखर पर, अष्टम पृथ्वी सार ॥ ४४ ॥
आठौं पृथिवीके तलैं, लगि रहे तीनौं वात ।
ताही के आधार भू, है अनादि विख्यात ॥ ४५ ॥
है सु घनोदधि पीतद्युति, मूंगअन्न घनरंग ।
तनु सु रंग नभ धनुष इति, तीनौं वात अभंग ॥ ४६ ॥
लंवी चौड़ी एक है, ऊंची लोक समान ।
चौदह राजू जानिये, त्रसनाली परिमान ॥ ४७ ॥
लावौ लोकके वीचमैं, त्रसनाली यह ठीक ।
है एताही क्षेत्रमैं, तिरस जीव तहकीक ॥ ४८ ॥
दो इन्द्रियकौं आदि ले, पंचेंद्री परजंत ।
त्रसनालीके भीतरे, तिरस जीव निवसंत ॥ ४९ ॥
ऊर्द्धलोक त्रेसठ पटल, अधोलोक उनचास ।
त्रसनालीके भीतरे, नरक रु स्वर्ग निवास ॥ ५० ॥
प्रथम नरक तेरह पटल, नीचैं दो दो हीन ।
सातौं पृथिवी पटल सव, हैं उनचास मलीन ॥ ५१ ॥
श्रेणिवंध आठौं दिशा, इन्द्रक मध्यस्थान ।
परकीर्णक सु जहाँ तहाँ, नरकविला दुखखान ॥ ५२ ॥

दिशा तथा विदिशानिमैं, श्रेणीबंध जु आठ।
संख्या नरक बिलानिकी, लखौ सु आगम पाठ ॥५३॥

उर्द्धलोक वर्णन।

चौपाई।

बत्तिस लख सौधर्म विमान, अट्ठाईस लाख ईशान।
द्वादश लक्ष सु सनतकुमार। अष्ट लक्ष माहेन्द्र सु धार ॥५४॥
ब्रह्म विमान सु संख्या सार। दोय लाख छ्यानवैं हजार।
हैं ब्रह्मोत्तर स्वर्ग विमान। इक लख चालिस सहस प्रमान॥५५
लांतव स्वर्ग विमान कहीस। सहस पचीस और व्यालीस।
हैं कापिष्ट सहस चौवीस। नवसै अट्ठावन सु सरीस॥ ५६॥
शुक्र विमान कह्यो जगदीस। संख्या वीस सहस्र रु वीस।
महाशुक्र विमान सु जसी। उनइस सहस रु नवसै असी॥५७॥
कहि सतार संख्या हित ठान। तीन सहस उनईस विमान।
हैं सु सहस्रार सुखरासि। दोय सहस नवसै इक्यासि॥ ५८॥

दोहा।

च्यारि सतक चालीस है, आनत प्रानत पाठ।
आरण अच्युत जुगलमैं, हैं सु दोयसै आठ॥ ५९॥
एक शतक ग्यारह अधो, मध्य एकसौ सात।
ऊर्द्ध विमान इक्यानवैं, ग्रीवक त्रिक त्रय ख्यात॥६०॥
अष्ट दिशा इक मध्यमैं, नव अनुदिश सु विमान।
च्यारि दिशा इक मध्य इति, पंच अनुत्तर मान॥ ६१॥

पटल संख्या ।

चौपाई ।

प्रथम द्वितीय इकतीस विख्यात, सनतकुमार महेन्द्र जु सात ।
ब्रह्म ब्रह्मोत्तर च्यार सु इष्ट । दोय पटल लांतव कापिष्ट ॥ ६२ ॥
शुक्र महाशुक्र है एक । सतार सहस्रार हू एक ।
आनत प्राणत पटल जु तीन । पुनः जु आरण अच्युत तीन॥ ६३॥

दोहा ।

अष्ट जुगल सोलह सुरग, वावन पटल सुजान ।
ता ऊपर अहमिंद्र थल, पटल इकादश मान ॥ ६४ ॥
नवग्रीवकके नव पटल, अनुदिश एक प्रतीत ।
एक अनुत्तर सहित इति, ग्यारह कल्पातीत ॥ ६५ ॥
पटल पटल अंतर लखौ, ऊपर ऊपर दौर ।
जुगल जुगल प्रति है अधिक, अंतराल सब ठौर ॥ ६६ ॥

चौपाई ।

पूरब दक्खिन पश्चिम तीन । श्रेणीबँध लखिये सु प्रवीन ।
अग्नि और नैऋत्य जु दोय । विदिशा तने प्रकीर्णक जोय ॥६७॥
इन्द्रक सहित सु दक्षिण स्वर्ग । है सौधर्म तने इति वर्ग ।
इहविधि दक्षिण कह्यो पुरान । अब सुनिये उत्तर व्याख्यान ॥
वायव अर ईशान जु दोय । विदिशा माहिं प्रकीर्णक जोय ।
उत्तर श्रेणीबंध जु एक । है ईशान इति उत्तर टेक ॥ ६९ ॥

दोहा ।

दक्षिण उत्तर भेद है, यही अनुक्रम रीत ।
अष्ट जुगल सोलह सरग, कल्प कथन सु पुनीत ॥७०॥

श्रेणीवंध चहूं दिशा, पंक्तिरूप पहचान ।
परकीर्णक सु जहां तहां, इन्द्रक मध्यस्थान ॥ ७१ ॥
केवल च्यारौं दिशानिमैं, श्रेणीवंध विमान ।
विदिशा माहि नहीं सु इह, निश्चयथकी सु जान ॥७२॥
वासठि वासठि चहुं दिशा, श्रेणीवंध विमान ।
प्रथम पटलमैं है सु पुनि, ऊपर अनुक्रम हान ॥ ७३ ॥
एक एक च्यारौं दिशा, घटै पटल प्रति च्यार ।
ऊपर पटलनिमैं लखो, अनुक्रम यही प्रकार ॥ ७४ ॥
श्रेणीवंध सु च्यार हैं, हैं सु प्रकीर्णक च्यार ।
इन्द्रक इक अनुदिश विषैं, नव विमान अवधार ॥ ७५ ॥
श्रेणीवंध सु च्यार हैं, परकीर्णक नहिं कोय ।
इन्द्रक एक अनुत्तरे, पंच विमान जु होय ॥ ७६ ॥
सप्त सहस अरु आठसै, सोलह जोड प्रमान ।
त्रेसठ पटलनिके सरव, श्रेणीवंध विमान ॥ ७७ ॥
लाख सु चौरासी लखो, सहस सतासी और ।
इकसै चौवालीस सव, परकीर्णक सुख ठौर ॥ ७८ ॥
प्रथम सु पेंतालीस लख, अंत एक लख मान ।
इति त्रेसठ इन्द्रकनिको, व्यास यथाक्रम हान ॥ ७९ ॥
वहु योजन विस्तार है, एक एक सु विमान ।
भिन्न भिन्न हैं सरव ही, वहु सुखमयी सुथान ॥ ८० ॥
कल्पवृक्ष दशविधि घने, वाग वावडी महल ।
भोगुपभोग सु वस्तु वहु, सव सामग्री सहल ॥ ८१ ॥

इति इक इक सु विमान प्रति, बहुत बहुत हैं देव।
बहु प्रकार शोभा सहित, है महिमा बहु भेव ॥ ८२ ॥

राजे सर्व विमान महिं, इक इक श्रीजिनभौन।
मन वच तन बहुभक्ति युत, प्रणमौं करि चितौन ॥ ८३ ॥

सिद्धक्षेत्र अरु सिद्ध शिल, मनुष्य लोक परिमान।
इन्द्रक प्रथम नरक स्वर्ग, पांचौ एक समान ॥ ८४ ॥

प्रथम नरक इन्द्रक पुनः, सरवारथ सिद्धि विमान।
जम्बू योजन एक लख, तीनों एक समान ॥ ८५ ॥

मध्य लोक रचना घनी, द्वीप उदधि विरतंत।
इक राजूमैं जानिये, संभुरमन परजंत ॥ ८६ ॥

अधो रु ऊरध लोकमैं, विकल चतुष्क न होय।
तथा भोगभू क्षेत्रमैं इह नहिं उपजै कोय ॥ ८७ ॥

दो इन्द्रिय ते इन्द्रिया, अरु चौ इन्द्रिय जान।
और असैनि पंचेन्द्रिय, विकल चतुष्क प्रमान ॥ ८८ ॥

कर्मभूमिके क्षेत्रमैं, विकल चतुष्क जु होय।
अन्य जु काहू क्षेत्रमैं, इह नहिं उपजै कोय ॥ ८९ ॥

देव न उपजै नारकी, नहीं देवगति पाय।
नारक पुन नहिं नरकगति, नहीं सु सुरगति जाय ॥ ९० ॥

पशु असैनि पंचेन्द्रिय, प्रथम धरालों जाय।
सैनी पशु अरु मनुप इह, सातौं थल उपजाय ॥ ९१ ॥

पद्धड़ी।

षट नरक निकलि गति दोय प्राप्त, नर पशु गर्भज सैनी प्रयाप्त।
सप्तम सु निकसि नरजन्म नाहिं, उपजै जु क्रूर तिरजंच माहिं॥

दोहा।

सुरमैं उपजें नर तथा, पंचेन्द्रिय पशु दोय।
बहुरि सु सुरपदतैं चये, लहैं पांच गति सोय॥ ९३॥
पृथिवी जल प्रत्येक तरु, इति बादर पर्याप्त।
पशुसैनी नर पंचमैं, सुर मरिकैं ह्वै प्राप्त॥ ९४॥

गीता।

ईशानलौं सुर चये ताकों पांच गति परमानिये।
तासु ऊपर सहस्रार परजंत दोय वखानिये॥
होय नर अथवा पँचेन्द्रिय पशू माहिं जनमहि धरै।
बारहैं ऊपरके सु सुर सब मनुषहीमैं अवतरैं॥ ९५॥

दोहा।

पंच स्थावर विकलत्रय, नर पशु पंचेन्द्रीय।
इह सु दशनिमैं विकलत्रय, गत आगत जु करीय॥९६॥
सोई दसौं सुथानतैं, अगिनि वायुमैं आय।
बहुरि मनुष विनु नवनिमैं, जाय अगिनि अर वाय॥९७॥
पृथिवी अप तरु गत सोई, दस थानकमैं जाय।
आगत सो दशतैं तथा, सुरहूतैं इत आय॥ ९८॥
कर्मभूमिको नर पशू, भोगभूमि उपजाय।
भोगभूमिया नर पशू, पावै सुर परजाय॥ ९९॥

अधो धरा छहलौं गमन, ऊपर षोडस कल्प ।
कर्मभूमि नारीनिकी, हद्द उत्पत्ति विकल्प ॥ १०० ॥

एकेन्द्रियकौं आदि ले, जीव पंच परकार ।
कमल संख वीछू भ्रमर, मच्छ महा विस्तार ॥ १०१ ॥

वनसती थावर प्रकृति, उदय निगोदिया माहिं ।
अरु साधारन प्रकृति उदय, जीव अनँत इक ठाँहि॥ १०२

नर पशु तिरस शरीरमैं, वसैं निगोद अनँत ।
तथा वनस्पतिमैं घनो, है निगोद विरतंत ॥ १०३ ॥

कोउ निगोद करि रहित कोउ, सहित वनस्पति मान ।
अन्य च्यार थावरनिमैं, नहीं निगोद वखान ॥ १०४ ॥

चौइन्द्रियलौं जन्म सव, सम्मूर्च्छन पहचान ।
पंचेन्द्रिय गर्भज कोऊ, कोऊ सम्मूर्च्छन जान ॥ १०५ ॥

चौपाई १६ मात्रा ।

है सम्मूर्च्छन जन्म सु प्रानी, वहुरि सवै नारक दुख थानी ।
लिंग नपुंसक है इह दोऊं, अन्य लिंग इनके नहिं कोऊ १०६

गीता ।

भोगभू नर पशू और कुभोगभू नर भेव जू ।
तथा मनुष्य मलेच्छ खंड रु चतुर्भेव सु देव जू ।
वर्ज्यों नपुंसक लिंग इनमैं कोऊ नाहीं होय ही ।
होय स्त्री पुरुष इनमैं, लिंग भेद जु दोय ही ॥ १०७ ॥

दोहा ।

कर्म भूमि नर पशुनिको, वेद जु तीन प्रकार ।
नामप्रकृति वश द्रव्य अरु, भाव जु मोह विकार ॥१०८
ऋद्धिधारि ऋषि और सव, भोगभूमिया जीव ।
हरि प्रतिहरि चक्रीश नर, करें विक्रिया सदीव ॥ १०९
ऋद्धिऋषी वा कल्पसुर, अरु विद्याधर सार ।
इनका इति कलि भरतमैं नहीं विहार अवार ॥ ११० ॥
नरतैं अधिक सु नारकी, तातैं अधिक सु देव ।
तातैं अधिक तिरजंच गति, अल्प वहुत्व सु भेव ॥१११
वैमानिक सुरतैं अधिक, भवनपती हैं देव ।
तातैं व्यंतर अधिक पुन, अधिक ज्योतिषी एव ॥११२॥
प्रथम युगल सुरलोकतैं, उपरिम उपरिम थान ।
है वैमानिक देवका, अल्प अल्प परिमान ॥ ११३ ॥
प्रथम नरकके भूमिसों, हेठिम हेठिम थान ।
है जु नारकी जीवका, अल्प अल्प परिमान ॥ ११४ ॥

सवैया ।

छ्यानवे कुभोग भूमितैं अधिक उत्तममैं, उत्तमतैं अधिक सु मध्यममैं मानिये । मध्यमतैं अधिक जघन्य भोगभूमि माहिं, ताहूतैं अधिक भरत ऐरावत जानिये ॥ ताहूतैं अधिक हैं विदेह क्षेत्र माहिं नर, ऐसें अनुक्रम अल्प वहुत्व वखानिये । इत्यादिक भेद घने जैनग्रन्थ मांहि भने, द्वीप ढाई लों मनुष्यक्षेत्र परमानिये ॥ ११५ ॥

दोहा ।

असंख्यात सब द्वीपमैं, भोगभूमि सर्वत्र ।
सैनी पंचेन्द्रिय सबै, पशू जीव हैं तत्र ॥ ११६ ॥
जुगलरूप उत्पति तहाँ, वरतै सहज स्वभाव ।
नहीं क्रूर कोउ सरल सब, द्युति युत क्षेत्र प्रभाव ॥ ११७॥
है उत्तम संस्थान तथा, उत्तम सँहनन सार ।
सांतर अल्पाहार तहँ, नहीं निहार विकार ॥ ११८ ॥
विघटि जाय तहँ मरन समै, देह जु वादल एव ।
हैं सुभद्र परिणाम सब, मरिकैं उपजैं देव ॥ ११९ ॥
आधो द्वीप सु अंतको, उदधि सु पूरा ठौर ।
कर्म भूमिका क्षेत्र है, च्यारों कोना और ॥ १२० ॥
स्वयंभुरमन समुद्रके, वाहिज कोना च्यार ।
है चित्राको अंत इति, कर्मभूमि व्यवहार ॥ १२१ ॥
जम्बूद्वीपादिक सबै, दीप उदधि विरतंत ।
दुगुण दुगुण विस्तार सब, वलयाकृति सोहंत ॥ १२२ ॥
सबही दीप समुद्रके, अंतमांहि चँहु फेर ।
वेदी भींति समान छवि, कंचनवर्ण सु हेर ॥ १२३ ॥
गहराई सब उदधिकी, चित्रा पृथिवी माहिं ।
एक सहस योजन लखो, अधिकी कोऊ नाहिं ॥ १२४ ॥

सवैया ।

लवणोदधि खारो जल दूजो कालोदधि तीजो पुष्कर समुद्र दोऊ भलो जल जानिये। चौथो वारुणी उदधि मदिरा समान

कहौ पांचमां सु क्षीरोदधि क्षीर स्वाद आनिये। छट्ठो घृतवर नाम घृत स्वाद है अनादि स्वयंभू रमन अंत जल स्वाद मानिये। एई सातों भिन्न स्वाद और असंख्यात सवै, इक्षुरस स्वाद सम उदधि प्रमानिये ॥ १२५ ॥

दोहा।

दोय समुद्र सु आदिका, एक समुद्र सु अंत।
जलचर तीन समुद्रमैं, कर्मभूमि विरतंत ॥ १२६ ॥

सोरठा।

लवणोदधि पाताल, कलश सहस अरु आठ है।
जिनवानी सु विशाल, अन्य उदधिमैं नहिं कहे ॥१२७॥

दोहा।

आदि अढाई द्वीपमैं, पांचों मेरु महंत।
इकसै सत्तरि क्षेत्रमैं, मोक्षमार्ग जयवंत ॥ १२८ ॥
सप्त क्षेत्र छह गिरिनितैं, जम्बू तेरह थान।
दुंहु दिशि रीति समान है, मध्य विदेह महान ॥१२९॥
लख योजन जम्बू तने, इकसै नव्वै भाग।
भरत एक दो हैमवन, इत्यादिक अनुराग ॥ १३० ॥
भद्रसाल बन मध्य है, पूर्वापर सु विदेह।
मोक्षमार्ग बरतै तहाँ, नमौं सु मन बच नेह ॥ १३१ ॥
इनि आदिक रचना घनी, सहज स्वभावे लोक।
करि यथार्थ चिंतवन भवि, त्याग हर्ष अरु शोक ॥१३२

नहिं कर्त्ता हर्त्ता कोऊ, रक्षक भक्षक नाहिं ।
स्वतः सिद्ध यह लोक है, नित अविनाशी ठाँहिं ॥१३३॥

बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा ।

अन्यसंपदा जीवकौं, मिली सु केतिक वार ।
पै अनादितैं नहिं मिल्यो, सम्यग बोधि विचार ॥ १३४ ॥
अहो बोधि विनु 'जग' वृथा, करै कष्ट तन सोख ।
सम्यकज्ञान क्रिया विना, मिलै न मारग मोख ॥ १३५ ॥
सम्यग रत्नत्रयमयी, शिवमारग है एक ।
इह सुबोधि दुर्लभ महा, दुर्लभ स्वपर विवेक ॥ १३६ ॥
परम देव गुरु शास्त्रका, है दुर्लभ संयोग ।
जा प्रसाद या जीवका, मिटै भ्रमन भव रोग ॥ १३७ ॥
पगै जवै जिन वैनमैं, भगै मोह भ्रम जाल ।
लगै सुमारगमैं तवै, जगै बोध ततकाल ॥ १३८ ॥
वहु मिथ्यात्व कषाय करि, ग्रसित सर्व जगजंत ।
हैं विरले ज्ञानी पुरुष, विरले साधु सु संत ॥ १३९ ॥
अनेकान्तमय वस्तुका, बोध सु दुर्लभ रूप ।
है दुर्लभ या जीवकौं, प्राप्ति सु शुद्धस्वरूप ॥ १४० ॥
अपने सहज स्वभावकौं, नहिं चेतै चिद्रूप ।
तातैं शुद्ध स्वरूप निज, होरह्यो दुर्लभ रूप ॥ १४१ ॥
अपने सहज स्वभावकौं, जो चेतै चिद्रूप ।
नहिं दुर्लभ अति सुलभ सो, लहै सु शुद्ध स्वरूप ॥१४२॥

धर्मानुप्रेक्षा ।

विनु जाने जिनधर्मके, पाय मनुष परजाय ।
उक्ति युक्ति अति चतुरता, सबै निरर्थक जाय ॥ १४३ ॥
आतमके हैं अहित सब, तन धन बहु परिवार ।
प्रगट एक जिनधर्म है, निज आतम हितकार ॥ १४४ ॥
दशलच्छन जिनधर्म है, रत्नत्रय त्यौं धर्म ।
जीवदया है धर्म निज, वस्तुस्वभाव सु धर्म ॥ १४५ ॥
भ्रमत भ्रमत भवचक्रमैं, मिल्यो आज जिनधर्म ।
पाय सु चिंतामणि महा, मूरख लखै न मर्म ॥ १४६ ॥
चौदह जीवस्थान तथा, मारगना गुणथान ।
जीवतत्त्वका कथन यह, प्रगट सु धर्म वखान ॥ १४७ ॥
मारगना गुणथानमैं, जीवसरूप विचार ।
है यह धर्म सु भावना, धरैं भव्य हितधार ॥ १४८ ॥
दुर्गतितैं उद्धार करि, धरै सु इष्टस्थान ।
श्रीजिन कथित सु धर्मकी, है सामर्थ्य महान ॥ १४९ ॥
सुखी तने सुखवृद्धि कर, दुखी तने दुखहान ।
सकल सत्त्व हित हेत है, धरम परम कल्यान ॥ १५० ॥
मिले मोक्षसुख धर्मतैं, 'जग' सुख मिलै विशाल ।
उपजे उत्तम अन्न ज्यों, सहज हि घास पराल ॥ १५१ ॥
एक सुधर्म हिं साधतैं, सर्व सु काज सधाहिं ।
जो गहि सेवै मूल तरु, मिलै फूल फल छाँह ॥ १५२ ॥

धर्म कल्पतरुतैं मिलै, मोक्ष महाफल सार ।
इन्द्रिय सुख छाया सहज, ज्यों सु वृक्ष विस्तार ॥१५३॥

संक्षेपद्वादशानुप्रेक्षा ।

चौपाई ।

स्वामी कार्त्तिकेय निर्ग्रन्थ । रचि द्वादश अनुप्रेक्षा ग्रन्थ ॥
तिनके चरन नमौं हितधार । भावों भावन वारंवार ॥ १५४ ॥
तन धन बहु यौवन जग माहिं, थिरीरूप कछु रहैं सु नाहिं ।
है अनित्य जगका व्यवहार, तातैं अव सव मोह निवार ॥१५५
अंत दिवस जव पहुंचै आय, तहाँ नहीं कोउ शरण सहाय ।
तातैं पर शरणनिकी आस, तजै सजै निजब्रह्म विलास ॥१५६
द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव, पंच परावर्त्तन दुख दाव ।
जौलों भ्रमै पंच संसार, तोलों सुखको नहीं लगार ॥ १५७ ॥
परे अकेला कुगति मझार, करै अकेला स्वर्ग विहार ।
आपु हि जन्म मरण दुख भरै, आप अकेला भवजल तरै १५८
जीव रु देह एक नहिं होय, है निश्चय यह द्रव्य जु दोय ।
देह गेह ज्यों न्यारो सदा, मोतैं सरव वस्तु है जुदा ॥ १५९ ॥
हाड मांस मल मूत्र घिनान, अशुचिरूप यह देह निदान ।
शुचिस्वरूप आतम पहचान, विमल सु गुण निज दरशन ज्ञान॥
काय वचन मन योग निमित्त, 'जग' जीवनिको आस्रव नित्त।
सकषायीके वहुथिति थाय, अकषायीके शीघ्रहि जाय ॥१६१
गुप्ति समिति सुधर्म की रीत, अनुप्रेक्षा गहि परिषह जीत ।
जहँ सम्यक् चारित्र विधान, तहाँ सु है संवर परधान॥१६२॥

सब ही 'जग' जीवनिको जोय, यथाकाल निर्जरा जु होय।
तपबलतैं निर्जरा सु जहाँ, शिवमारगकी रीति सु तहाँ ॥१६३
है षट्द्रव्यात्मक यह लोक, यामैं वृथा हर्ष अरु शोक ।
सब विधि मोहभाव करि दूरि, ज्ञानानंद सुगुण परिपूर १६४
शिवमारग सु बोध पावना, है जगमैं यह दुर्लभ घना ।
है समाधिका दुर्लभपना, इत्यादिक दुर्लभ भावना ॥ १६५ ॥
है चहुंगतिका कष्ट अपार, तातैं करै धर्म उद्धार ।
धारै इष्ट स्थानक माहिं, धर्मसमान और कछु नाहिं ॥१६६॥

इति श्रीधर्मरत्नोद्योतग्रन्थे द्वादशानुप्रेक्षानामा सप्तमोऽधिकारः ।

अथ समाधिभावनाधिकारः प्रारभ्यते।

दोहा।

वंदौं श्रीगुरुचरन नित, वहु प्रकार श्रुति ठान।
जिनके भक्ति प्रसादतैं, मिले समाधि विधान ॥ १ ॥
जिनगुण संपत प्रणमि उर, शुद्धभाव विस्तार।
नमौं शीलगुण संपदा, ज्यौं पावें भवपार ॥ २ ॥
कनक कामनी रीत जे, जीत चले गिरनार।
ते जिनेंद्र त्रिभुवन तिलक, वंदौं नेमकुमार ॥ ३ ॥
रानी राजमती सती, इकपट सौर सम्हार।
उत्तम आर्याव्रत लह्यौ, रह्यो अल्प संसार ॥ ४ ॥
विना सु व्रत संयम गहे, संवर रीत न होय।
विना सु संवरके धरे, तरे न भवि भवतोय ॥ ५ ॥
परवस वहु संकट सह्यो, काज न सुधर्‍यो कोय।
ज्यौं स्वभावतैं तप तपे, कर्म निर्जरा होय ॥ ६ ॥
पौषै नहीं स्वदेहकौं, शोखै गहि तपरीत।
धोखेमैं ज्यौं मोहके, करै न क्रिया अनीत ॥ ७ ॥
क्रोध मान छल लोभ है, इह पर भव दुखदाय।
या अवसर अव शीघ्रही, तजि कषाय समुदाय ॥ ८ ॥
नहीं हास्य कोउ वस्तुतैं, प्रीत नहीं नहिं द्वेष।
शोक ग्लान भय भाव तज, तीनो वेद विशेष ॥ ९ ॥

इन कषाय मिथ्यात्व वश, दुख दीरघ संसार ।
अंतरंग परिगह यही, हैं चौदह परकार ॥ १० ॥
मोह द्रोह वस आतमा, चहुंगतिमैं चिरकाल ।
जनम मरन करतो फिरै, तीनशतक तेताल ॥ ११ ॥
तीन लोक तिहुं कालमैं, भ्रमनसु 'जग' जंजाल ।
भव अटवी संकट विकट, विविधहाल बेहाल ॥ १२ ॥
बहु पुद्गल या जीवने, भखे अनंती बार ।
तद्यपि त्रिसना नहिं मिटी, कठिन कष्ट संसार ॥ १३ ॥
आत्म अतुल सामर्थ्यमय, निश्चय महिमाधार ।
सो इक चुटकी चून हित, तरसै इति धिक्कार ॥ १४ ॥
होय न तृप्त अहारतैं, यह अनादिकी रीत ।
जो अनसन तप आदरै, रहै क्षुधा दुख जीत ॥ १५ ॥
नहिं त्रिपत्यो सुर सुरगमैं, जहँ बहु भोग विलास ।
अब यह नरभव अल्पका, कहा आस विश्वास ॥ १६ ॥
बडे बडे नृपकौं जहाँ, रह्यो न नाम निशान ।
कालचक्रकी चालमैं, इतरकि कौन कहान ॥ १७ ॥
जो या संसारहि विषै, कहुं होतौ सुख सार ।
तो 'जग' पुरुषोत्तम घने, क्यौं त्यागैं संसार ॥ १८ ॥
विनाशीक बाधा सहित, इंद्रियके आधीन ।
ऐसे सुखकौं सुख कहै, सो मतिहीन मलीन ॥ १९ ॥
उपजै अशुचि प्रभावतैं, अशुचि होय नश जाय ।
ऐसे अशुचिशरीरका, व्यर्थ इलाज उपाय ॥ २० ॥

ज्यौं कोइला वहु जलथकी, धोवे वारंवार ।
प्रगटै अधिक सु कालिमा, त्यौं तन अशुचि असार ॥२१॥
ऐसो कोउ 'जग' सुख नहीं, जो मैं भोग्यौ नाहिं ।
वारंवार कुमरनकरि, भ्रम्यौं चतुरगति माहिं ॥ २२ ॥
जहँ मातहि निजपुत्रकोउ, भखै दुष्ट तिरजंच ।
इति 'जग' दुखतैं मूढ़जन, अजौं डरै नहिं रंच ॥ २३ ॥
पावक जस्यौ अनंतभव, पस्यौ उदधिके वीच ।
कियो कुमरन इत्यादि वहु, दुख भोग्यौ गत नीच ॥२४॥
मांस अहारी मानवा, मोहि हत्यौ वहुवार ।
पशुपंछी परजायकी, कष्टकथा विस्तार ॥ २५ ॥
वहुविध पशुपरजायमैं, कियौ कसाई घात ।
वधिक हत्यौ पंछी वनौ, इति 'जग' दुखविख्यात ॥२६॥
श्वासमात्रके कालमैं, मरन अठारह वार ।
जनम मरन जु निगोदको, को कहिसकै अवार ॥ २७॥
थावर विकलेंद्रियनको, प्रगट हीन परजाय ।
जहां जु मरनतने विविध, हैं कारनदुखदाय ॥ २८ ॥
निःकारन दुर्जननिकरि, सह्यो उपद्रवभार ।
रनमैं हास्यौ शत्रुकरि, हत्यो गयौ वहुवार ॥ २९ ॥
रोग दरिद्र क्षुधादिजुत, क्लिश्यमान वहुवार ।
मस्यौ मिथ्यात कषायवश, 'जग' दुख अगम अपार ॥३०॥
माता जनमअनंतकी, मेरे मरनमझार ।
रुदन कियो सो सव सलिल, हुवा नदी उनहार ॥ ३१ ॥

मर्यौ अनंती वार पैं, कियौ न मरनसमाधि ।
लियौ न लाहो जनमकौ, सदा सह्यौ भवव्याधि ॥ ३२ ॥
सागर जलकी प्यासमैं, मिलै वूंद नहिं एक ।
घनी कुगतिकी वेदना, भोगी वार अनेक ॥ ३३ ॥
जो करता भोक्ता सोई, निसंदेह यह न्याय ।
तीव्र उदय जहाँ पापको, तहँ नहिं कोऊ सहाय ॥३४॥
अंतर कर्मप्रकृति उदय, लखै न मूढ विशेष ।
वाह्य वृथा परद्रव्यतैं, करै राग अरु द्वेष ॥ ३५ ॥
तीव्र स्थिति अनुभागजुत, उदय असाता जाहि ।
अहो कहो को जगतमैं, मेट सकै दुख ताहि ॥ ३६ ॥
जव जाको जैसो उदय, मेट सकै नहिं कोय ।
धरै जु थिरता धर्ममैं, होनी होय सो होय ॥ ३७ ॥
परतैं तोरहि प्रीत जो, जोरहि परम समाध ।
निजाधीन वरतै सदा, निरपराध सो साध ॥ ३८ ॥
रोगादिक वहु कष्टको, जानइ सहज इलाज ।
करै न कछु उपचार जो, धन्य महामुनिराज ॥ ३९ ॥
आयो नरभव हाटमैं, धर वहु वणिज उमाह ।
धरम बनिज कर ले नफा, चलिये शिवपुर राह ॥४०॥
आवै कछु ल्यावै नहीं, जाय न कछु ले हाथ ।
पाप पुण्य परिणाम फल, लेय चलै निजसाथ ॥ ४१ ॥
जनम धरै सो सब मरै, यामैं कहा उपाय ।
यही रीत संसारकी, फूलै सो कुम्हिलाय ॥ ४२ ॥

आराधै आराधना, जनम मरनदुख जाय ।
यह अनादि संसारमैं, यही सु एक उपाय ॥ ४३ ॥
ज्यौं रनका वाजा सुने, सूरभाव उमगाय ।
निकट काल ज्ञानी गुने, ज्ञानविराग अधिकाय ॥ ४४ ॥
कहा देह मोकौं तजे, मैं तज धों यह देह ।
दगावाजतें चतुर ज्यौं, करै न नेंक सनेह ॥ ४५ ॥
कालतनी ललकार सुनि, सिंह आतमा सूर ।
जागृत ह्वै अरु वल फुरै, शक्ति समाधि प्रपूर ॥ ४६ ॥
धरि थिरता परिणामकी, करो सु काज अडोल ।
वीतइ लाख करोरकी, इकइक घरी अमोल ॥ ४७ ॥
लाय लगी तनगेहमैं, करिये तन गृह त्याग ।
रत्नत्रय निधि लेय निज, आतम चलै सु भाग ॥ ४८ ॥

चौपाई ।

वाहिजमैं कृष करै जु काय । अंतरंग करि छीनकषाय ।
वाह्याभ्यंतर दोऊं प्रकार । सल्लेखना रीत विस्तार ॥ ४९ ॥
दर्शन ज्ञान चरन तप सार । आराधइ आराधन च्यार ।
आगम उक्ति समाधिविधान । कैरै सु निज आतम कल्यान ५०

दोहा ।

भक्तप्रतिज्ञा नाम अरु, इंगनी मरनप्रवीन ।
है प्रायोपगमन परम, इति समाधि विधि तीन ॥ ५१ ॥

चौपाई ।

आप करै निजतनका कार । और हु पर जु करै उपचार ।
दोउविधि वैयावृत्त निखेद । सो है भक्तिप्रतिज्ञा भेद ॥ ५२ ॥

आप करै निजतनका कार। परतैं नहीं करावै कार।
धरै जु यह संन्यास विधान। इंगनीमरन नाम ज्यो जान ॥५३॥

दोहा।

अपने तनका आपही, करइ उचित कछु कार।
परकृत वैयावृत नहीं, इंगनी मरन मझार ॥ ५४ ॥
आदि तीन संहननयुत, परम पराक्रम वीर्य।
इंगनी मरन समाधि विध, धरइ साधु धरि धीर्य ॥५५॥
परकी नहीं सहायता, जहां आपही आप।
इंगनीमरनसमाधिमैं, है सु क्रिया निःपाप ॥ ५६ ॥

चौपाई।

आप हु नहीं करइ उपचार। परहूतैं न करावै कार।
दोउविधि बैयावृत नहिं रंच। सो प्रायोपगमनं सुखसंच॥५७॥

दोहा।

निज प्रयोगतैं नहिं करै, रंचहु क्रिया शरीर।
है प्रायोपगमन जु थिर, धरम सरूपी धीर ॥ ५८ ॥
भक्तिप्रतिज्ञामैं कहे, भेद सु दोय प्रकार।
एकभेद सविचार है, दूजा है अविचार ॥ ५९ ॥

चौपाई।

वहुतकालपहिलेतैं साधन। है सु विकल्पविचाराराधन।
सो सविचार भेद विस्तार। कथन तासु चौलिस अधिकार॥६०

१ भगवती आराधनासारके ४० वें अधिकारमें यह कथन है।

गीता ।

भक्ति प्रत्याख्यान मैं जे द्वितिय भेद अविचार जू ।
ताके कथनमैं जानिये भवि भेद तीन प्रकार जू ॥
है निरुद्ध निरुद्धतर अर नाम परम निरुद्ध जू ।
सो सब कथन भगवति अराधन ग्रंथ पढिये सुबुध जू ॥६१

चौंपाई ।

केई कारण वश करके जहाँ । शीघ्र मरन आपहुंचै तहाँ ।
यथा सु ओसर धरमविधान । सो अविचार भेद पहिचान ६२
रोगादिक वश पौरुप थके । पर गणमाहिं नहीं जासकै ।
अपने संघमाहिं संन्यास । भेद प्रकाश तथा अप्रकाश ॥ ६३ ॥
क्षपक बुद्धि बल धीर्थ महान । सबसामग्री श्रेष्ठ सु जान ।
सबविध महिमा है सु मनोग्य । तहँ समाधि प्रकाशवे योग्य६४
क्षपक बुद्धि बल अल्प सु धार । सामग्री नहिं श्रेष्ठ अवार ।
तहाँ समाध करावै सही । पै विख्यात प्रकाशै नहीं ॥ ६५ ॥

गीता ।

भक्तिप्रत्याख्यानका सविचार भेद महान जू ।
बरतै तहाँ अधिकार चालिस कथन अधिक प्रधान जू ।
उत्कृष्ट द्वादश बरपका वर्त्तन सु विधि तहँ जानिये ।
पुन घाटकाल सु यथाअवसर यथाशक्ति प्रमानिये ॥६६

अडिल्ल ।

जब ही द्वादश वर्ष शेष रहै आयुकौं ।
निर्यापक गुरुकौं ढूंढै जु उपायकौं ॥

सात सतक जोजनलौं करइ तलास जू।
जो समाधि विधि वनै सुगुरुके पास जू॥ ६७॥

चौपाई।

सर्वतोभद्रादिक वहु रीत। च्यार वरस तप तपै पुनीत।
फेर जु च्यार वरस लौं सार। रसपरित्याग सु तप विस्तार॥
कवहू अल्प सु भोजन जान। कवहू नीरस भोजन खान॥
ऐसैं दोय वरस तप धार। एक वरस लौं अल्प अहार॥ ६९
नहिं तप अति उतकृष्ट प्रकाश। अनुत्कृष्ट तप है छहमास॥
सर्वोत्कृष्ट सु तपकी रीत। धरै अंत छहमास पुनीत॥ ७०॥

चौपाई।

जहाँ नीचका नहीं परोस। अविनयी जनका नहिं रोस।
नहीं जु शीत उष्ण वेदना। नहीं पवनकी वाधा घना॥७१॥
जंतु रहित उन्नत समरूप। अति विस्तीर्ण प्रकाश स्वरूप।
द्वार कपाट सहित सु विचार। ऐसीविधि सु वस्तिका सार ७२
शुद्ध भूमि वा काष्ठ विचार। तापैं प्राशुक त्रण अवधार।
अति सु प्रशस्त पवित्र पुनीत। लखो सु भवि यह संस्तर रीत॥

दोहा।

समाधान संस्तरविषै, क्षपक पुरुष जु अवार।
पूर्वतथा उत्तरदिशा, कर सिरिधाना सार॥ ७४॥

चौपाई।

वैयावृतकी रीत सरीस। कहि उतकृष्ट जु अडतालीस।
घाट यथाऔसर विधि सही। जघन दोयसौं कमती नहीं॥७५

क्षपकमुनिवैयाव्रतके ४८ अधिकारी ।

दोहा ।

च्यारप्रकार कथाविषै, विक्षेपनी सु टार ।
अवर जु तीनकथा धरै, करै आत्म उपकार ॥ ७६ ॥
पापपंथ परमत तने, बहुविधि खंडनहार ।
या अवसर विक्षेपनी, कथा नहीं अधिकार ॥ ७७ ॥

चौपाई ।

जिनशासन श्रद्धान बढाय । आक्षेपनी कथा सुखदाय ।
संवेदनी धरम अनुराग । निर्वेदनी सु कथा विराग ॥ ७८ ॥
है बहुविधि अति कथा पुनीत । कथन यथागम सम्यकरीत ।
यथायोग्य सुकथा विस्तार । याके अधिकारी हैं च्यार ॥७९॥
यत्नसहित बैठाय उठाय । कीजे जो करवट बदलाय ।
सेवा टहल जु विविधप्रकार । याके अधिकारी हैं च्यार ८०
विधिपूर्वक जो भोजनवस्त । ताकी उपकल्पना प्रशस्त ।
यथा उचित सुपथ्य आहार । याके अधिकारी हैं च्यार॥८१॥
पानयोग्य जे हैं कछु वस्त । ताकी उपकल्पना प्रशस्त ।
सबविधि यथायोग्य व्यवहार । याके अधिकारी हैं च्यार ८२
खानपानकी वस्त समस्त । ताकी रक्षाविधि सु प्रशस्त ।
सबविधि रीत विरुद्ध निवार । याके अधिकारी हैं च्यार८३
बहुप्रकार कफ आदिक तथा । बहुविधि मलमूत्रादिक यथा ।
साफ करहिं जो वारंवार । याके अधिकारी हैं च्यार ॥ ८४ ॥

अविनयी मिथ्याती आय । कोउ प्रकार निकट नहिं जाय ।
रक्षाकरइं वस्तिकाद्वार । याके अधिकारी हैं च्यार ॥ ८५ ॥
मुनि समाधि आवैं बहु लोग । सभामाहिं तिष्ठैं सु मनोग ।
तिनतैं उचित वचन उच्चार । याके अधिकारी हैं च्यार ॥८६
रात्रिसमय जो जाग्रत रहै । जो ऐसी सामर्थ्य जु लहै ।
बहु निद्रा दूषन परिहार । याके अधिकारी हैं च्यार ॥८७॥
वृथा प्रलाप करैया लोग । दूर रहौ सब लोग अयोग ।
बहु जनको संबोधन सार । याके अधिकारी हैं च्यार ॥ ८८ ॥
सुनि समाधि केइ जगजन जहाँ । वादकरनकौं आवै तहाँ ।
करै बाद परमत परिहार । याके अधिकारी हैं च्यार ॥ ८९ ॥

गृहस्थके समाधिमरनकी विधि ।

गीता ।

भक्त प्रत्याख्यान जो सविचार भेद प्रशस्त जू ।
है ताहिके आशय कथन सु समाधिविधि गार्हस्त जू ॥
ताको इहां बरनन सु अतिसंक्षेप कथन अनूप है ॥
शुचिरुचि सहित सुनिये सु भवि सबकौं प्रयोजनरूप है९०

चौपाई ।

पूरब कियौ पापको काज । सो सब दोष त्यागिये आज ।
तजि मिथ्यात सर्व परकार । जिनशासनकी श्रद्धा धार ॥९१॥
बारह व्रत श्रावकके धरै । सर्व अभक्ष्य वस्तु परिहरै ।
रहै सु बहुप्रकार व्रत मंड । ब्रह्मचर्यव्रत धरै अखंड ॥ ९२ ॥

अंजन मंजन तन शृंगार। त्याग करइ सब विषय विकार ।
त्यागै सरव सचित आहार। विविध सु क्रियानियम उर धार९३
सय्यादिकका करि परित्याग। तजि वाहनचढनौ अनुराग ।
गृहधनका सब ममत निवार। देय सु दान च्यार परकार॥९४॥
श्रीजिनमंदिरमैं धन देय। अरु कुटंबहित त्याग करेय ।
त्यागै पापारंभ सु आप । अवर घटावे निद्रा पाप ॥ ९५ ॥
इस्त्री राज देश आहार । इत्यादिक दुःकथा निवार ।
विकथा वचन रु धरमविरुद्ध। कहै नहीं नहिं सुनै सु बुद्ध ९६

दोहा ।

जिहँ वार्तासौं क्षोभ उर, उपजै भाव विखाद ।
सो कुकथा विकथा चतुर, तजै सर्व वकवाद ॥ ९७ ॥

चौंपाई ।

त्यागै पांचौं इंद्रिय लोभ । धरै सु आतमज्ञान अछोभ ।
क्रमक्रमतैं आहार घटाय । करै सु सलेखना उपाय ॥ ९८ ॥
प्राशुक विधिसौं अलप अहार । करै तपस्या विविधप्रकार ।
करि साधर्मीका सतसंग । अन्य जननका तजै प्रसंग ॥ ९९॥
वहु साधरमी पंडित वना । तिनतैं है वहु यह प्रार्थना ।
है समाधि अवसर मम अवै । करि सु क्रिया निरवाहो सवै ॥
आराधना मरनकी रीत । सवविधि मोकौं मिलै पुनीत ।
उत्तमार्थ सामग्री लहौं । परम धरममैं थिरता गहौं ॥ १०१॥

दोहा ।

देहादिक परवस्तुका, सबविधि ममत निवार ।
धरों सु उज्जलरीततैं, आराधना अवार ॥ १०२ ॥

संपूरन परजायमैं, दोषभयो जो होय ।
मन वच कायसौं सब अबै, त्याग करतु हौं सोय ॥१०३

चौपाई ।

मनका सरव सल्यकर दूर । निर्मलभाव सु गुणपरिपूर ।
मित्र रु शत्रु कुभाव निवार । सबपैं उत्तम क्षमा सु धार१०४
त्रस थावर जे जीव अनंत । सबकी रक्षा चहै सु संत ।
मम कारण करकैं कोउ जीव । दुखी न हो सब सुखी सदीव ॥
जा संजमकौं सुरपति चहै । सो संजम नर क्यौं नहिं गहै ।
सुरग नरक पशुगतिमैं नाहिं । सो संजम या नरभवमाहिं १०६

दोहा ।

एकादश प्रतिमा सु विधि, श्रावक व्रत उपदेश ।
यथाशक्ति निजव्रत धरै, हरै प्रमाद कलेश ॥ १०७ ॥

पुत्रादिक परवार हित, त्याग सर्व गृह भार ।
जा दिन निज हूजे व्रती, धन्य घडी धन वार ॥ १०८ ॥

शुभपुद्गल शुभजीव शुभ, क्षेत्रसमय शुभयोग ।
बाह्याभ्यंतर शुभनिमत, तहँ व्रतग्रहन मनोग ॥ १०९ ॥

सोमलानतिथि औरहू, निमित ज्ञान शुभ देख ।
ज्यौं निर्विघ्न समाप्ति है, आराधनाविशेख ॥ ११० ॥

चौपाई ।

गृहारंभ सब त्याग कराय । टिकै पवित्रस्थानक जाय ।
शुद्धातमगुण व्याख्या सार । पढै सुनै जो सर्वप्रकार ॥१११॥
धरै सु सम्यक ज्ञानोत्साह । गहै सु व्रतसंयम निरवाह ।
आगम उक्त सुरीत पुनीत । सल्लेखना करै निज प्रीत ॥११२॥

दोहा ।

धरम समाधि बहु समय इति, बहुरि सुतप अधिकार ।
तनममता जु हटायकैं, अति घटाय आहार ॥ ११३ ॥

चौपाई ।

क्रम क्रमसौं आहार घटाय । अवर जु त्यागभाव अधिकाय ।
तहाँ अन्यश्रावक बहु आय । भोजनहेत सु विनय कराय ११४
असन भात रोटी इत्याद्य । लाडू पेडा आदिक खाद्य ।
गरी छुहारा खाद्य सु जान । तथा दुग्ध तक्रादिक पान ॥११५

दोहा ।

सामग्री देखत ही केइ, त्यागै भोजन वस्त ।
केइ भोजन करकें तजै, दुहुंविधि रीति प्रशस्त ॥ ११६॥

चौपाई ।

असन खाद्य स्वाद्य ये तीन । त्यागकरै जो क्षिपक प्रवीन ।
पान वस्तुका लेय अहार । साधै धर्म सु तन आधार ॥११७॥
भाततणा जो मांड पसेय । काढ़ा शरबत आदिक पेय ।
क्षीर[1] तथा तक्रादिविधान । यथालब्ध कछु उचित सु पान ११८

---

[1] दूध ।

छंद ।

धरमध्यान विना इक क्षण नहीं । वीति है सु उपाय यही सही।
जहां सबविधि शुभसंयोग जू । तहँ निरंतर शुभ उपयोग जू॥

दोहा ।

नहिं आलस्य प्रमाद नहिं, नहिं कछु वृथा प्रलाप ।
निशवासर शुभध्यानमय, धरम उद्यमी आप ॥ १२० ॥
अंतर क्षीण कषायको, बाहिज क्षीण शरीर ।
दुहुं प्रकार सल्लेखना, धरइ हरै भवपीर ॥ १२१ ॥
श्रीगुरुभक्ति प्रसादतैं, मिटै प्रमाद विकार ।
होय धर्म पुरुषार्थ ज्यो, मिलै मोक्षसुख सार ॥ १२२ ॥

चौपाई ।

रत्नत्रय है तीरथसार । जातैं तरइ भवोदधिपार ।
है षोडशभावना उदार । तीर्थंकरपदवी दातार ॥ १२३ ॥
धर्मसमान अबर कछु नाहिं । धरइ जु इष्टथानके माहिं ।
दशलच्छन जिनधर्म अनूप । धरिये हृदय सु धर्मस्वरूप ॥
वाचन परिवर्त्तन पृच्छना । इति स्वाध्यायभेदविधि घना ।
सो सब या अवसर है गौन । वृष उपदेश सु करि चिंतौन ॥
बहुरि यथाअवसर पहचान । अधिक जु त्यागभाव कल्यान ।
और त्याग ले केवल नीर । नीर त्याग अनसर धर धीर१२६
दर्शन ज्ञान चरन तपसार । आराधे आराधन च्यार ।
जपै जाप बहु मंत्रविधान । करै सु निज आतम कल्यान १२७

दोहा ।

अति निर्मलसम्यक्त्वगुण , ज्ञानजोति विस्तार ।
निरतिचार आचरन तप, आराधना सु च्यार ॥ १२८ ॥

चौपाई ।

ज्ञाता वहु समाधि व्यवहार । ऐसे गुरुजन परम उदार ।
है तिनकी सहायता सार । करें सु वहुविधि परउपकार १२९
क्षपक तने कछु भाव विकार । ज्यौं सुज्ञानमें करै विचार ।
तहं तैसो वुध करैं उपाय । भाव सुधारें धर्म सुनाय ॥१३०॥
कर्म उदय वश कोऊ प्रकार । विगडै भाव कदाचि अवार ।
पै गुरुजन तस त्यागें नहीं । सव विधि ताहि सम्हालें सही ॥
तास शरीर शक्ति घटजाय । तहां कहे निज मंत्र सुनाय ।
आगम उक्त धर्म उपदेश । जा प्रशाद सव टरें कलेश ॥१३२

उपदेश ।

दोहा ।

दर्शन ज्ञान सु जीवका, गुण हैं अपने पास ।
पुदगल देह विनाशतें, आतम गुण नहिं नास ॥ १३३ ॥
पर पुदगलके निमिततें, है अशुद्धतारूप ।
कार्मान तन त्यागतें, परम शुद्ध चिद्रूप ॥ १३४ ॥
है निश्चय या जीवका, ऊरध गमन सुभाव ।
सूधो गति इक समयमें, लोकशिखर ठहराव ॥ १३५ ॥
उत्तम क्षमा सु धर्म तथा, अनसनादि तपरास ।
सो सव आज सम्हालिये, जो कछु धर्म अभ्यास ॥ १३६ ॥

निः कषाय निः कपट उर, धरिये धर्मसमाज ।
परिषहादिके सहनका, है इह अवसर आज ॥ १३७ ॥
वहु तप तपे कटै करम, सो सहजहि परकार ।
होय निर्जरा आज जो, सहि उपसर्ग अवार ॥ १३८ ॥
कायर होत नहीं वनै, सूरवीरता लेहु ।
कर्मशत्रुको जीतकैं, धर्म नगारा देहु ॥ १३९ ॥
वहुविधि उज्जलरीततैं, कीजे व्रत प्रतिपाल ।
लीजे जस हूजे सुखी, शुद्धातम गुणमाल ॥ १४० ॥
इह अनादि संसारमैं, मर्‌यौ अनंतीवार ।
पै सुसमाधि विधान तोहि, मिल्यौ आज इह सार ॥ १४१ ॥
कायर भये नहीं वचै, क्यौं दुरगतिको जाय ।
धरो धर्ममें धीरता, जो भवभव सुखदाय ॥ १४२ ॥
उदय असाता शत्रुका, रंच न गिनो दवाव ।
मोहकर्मकौं जीतकैं, धर्मधुजा फहराव ॥ १४३ ॥
ज्यौं ज्यौं आवै कष्टविधि, त्यौं त्यौं अधिक सु धीर्य ।
अंत कर्मको नष्ट करि, प्रगट अनंत सु वीर्य ॥ १४४ ॥

गीता ।

वंदौं सु पद सुकुमालजी ततकालके दीक्षितमुनी ।
जिनका शरीर सु तीनदिनसौं भख्यौ भूखी स्यालनी ।
पैं धीर वीर अत्यंत निर्भय भावतैं वेदन सह्यौ ।
निर्वैर हृदय सुधर्म उत्तम क्षमा आदिक निर्वह्यौ ॥ १४५

कास श्वास रु वमन वेदन शूल आदिक दुखघना ।
बहु वरसलौं कष्ट सहि निर्वाहियौ व्रत आपना ॥
ऐसे जु सनतकुमारमुनिकी कथा उर धरिये सुधी ।
बहु उपद्रव कष्टमें दिढ़ धरिय व्रत सु धरमबुधी ॥१४६॥

दोहा ।

एकमास उपवासलौं, त्रिखावेदना घोर ।
धर्मघोष मुनिवर सह्यौ, तिन्हैं नमौं कर जोर ॥ १४७ ॥
माता जीव जु व्याघ्रनी, होय भख्यो सु शरीर ।
धन्न सुकोशल मुनि महा, धर्मध्यान धर धीर ॥ १४८ ॥
पुद्गल देह प्रसंगका, त्याग आश विश्वास ।
दर्श ज्ञान सुखअनँतबल, अपनी शक्तिप्रकास ॥ १४९ ॥

चौपाई ।

जीवद्रव्यकी घनी सु शक्त । कर्मबंधवश होय न व्यक्त ।
जो जिय निजाधीन तप गहै । सो सब कर्मबंध अघ दहै १५०
कर्म उदय सुखदुख व्यवहार । परमारथ निज शुद्ध विचार ।
रागदोष अरु देह मिलाप । है निश्चय यह परिगहपाप १५१
देह अवस्था देख मलीन । मन मलीन नहिं करै प्रवीन ।
पूरन गलन करै दिन रैन । पुद्गलतनमैं कभी न चैन १५२
ऐसो कछु उपाय नहिं होय । मरनथकी जु बचावै सोय ।
तातैं परवस्तुनतैं अबै । तजिये रागभावविधि सबै ॥ १५३ ॥
जन्ममरन जु अनंता भयो । अब यामैं क्या अचरज नयो ।
अब ऐसो बुध करहु उपाय । जातैं भवभवका दुख जाय १५४

संजम व्रत विन तजे जु प्रान। सो तौ वालमरन अज्ञान।
आराधन सह मरै जु कोय। उत्तमार्थ पद पावै सोय ॥१५५॥
जो पहिलै भये पुरुष प्रधान। तिन सव धर्‍यौ समाध विधान।
पुरुपोत्तमकी यही सु रीत। उत्तमार्थविधि गहै पुनीत ॥१५६॥
जैसैं कोउ सिपाही सार। सवदिन कियो कवायद कार।
पहुंचै जवहि जुद्धको काम। सहजरूप जीतै संग्राम ॥१५७॥

दोहा।

आराधन चिरकालको, साधन धर्मविशाल।
अंत सम्हालै संतकौं, कहा करै जम काल ॥ १५८ ॥

चौपाई।

निकट भव्य जे हैं जगमाहिं। ते या अवसर चूकैं नाहिं।
धरै सु धर्महि थिरता सार। सहज होय निजवेडा पार ॥१५९॥
महाघोर उपसर्गनिमांहि। धर्मध्यानतैं चिगै जु नाहिं।
जनम जनमके संचित पाप। इक छनमाहिं कटै संताप॥१६०॥
मगन सु आतम अनुभवमाहिं। कर्मकलेश जु व्यापै नाहिं।
गहै शुद्धसम्यक्त स्वभाव। कर्मजनित सव तजै विभाव १६१

दोहा।

सज्ञानी सव भय तजै, सजै सु निर्भय अंग।
ज्ञानानंद सुभावनिज, सहज अखंड अभंग ॥ १६२ ॥

चौपाई।

इह भव भय सवही परि हरै। परभव भय नहिं मनमैं धरै।
रक्षक भक्षक विकलप सवै। त्यागै अनरक्षाभय अवै ॥ १६३ ॥

अकस्मातभय नहिं कछु जोय । जो कछु होनी होय सु होय ।
नहीं वेदनाभय मन धरै । उदय असातातैं नहिं डरै ॥१६४॥
नहिं अगुप्त भयका जु लगार । तजै मरनभय सर्वप्रकार ।
तजि सातौं भयका जु प्रसंग । धरो सुनिर्भय भाव अभंग १६५

दोहा ।

नहिं वांछा उर मरनकी, नहिं जीवनकी आस ।
नहिं सु मित्र अनुराग उर, है समता सुखरास ॥१६६॥
पूरव भोग न चिंतवै, आगैं वांछै नाहिं ।
ज्ञानानंद स्वभाव निज, आतमीकगुणमाहिं ॥ १६७ ॥

चौपाई ।

नहिं जीवनकी आशा धरै । नहीं सु चाह मरनकी करै ।
मित्रनतैं त्यागै अनुराग । धरै सु निर्मलज्ञान विराग ॥ १६८
पूरव भोग याद मत ठान । आगैं नहिं कछु करहु निदान ।
इत्यादिक वहु मोहविकार । त्याग कुभाव जु सर्वप्रकार १६९
मेरे हित वहु सज्जन लोग । कियो विविध उपकार मनोग ।
सो सव सफल होय मम आज । प्रगट सँवारो आतम काज॥

दोहा ।

सहैं परीषह वीस द्वै, करै न नेक उपाय ।
परमदिगंवर गुरुचरन, मोपैं होहु सहाय ॥ १७१ ॥
सर्वप्रकार निग्रंथ पद, है निजहित उपकार ।
रुचि प्रतीत श्रद्धानयुत, स्तवौं वारंवार ॥ १७२ ॥

आप्तागम उपकारको, स्तवौं वारंवार ।
जा प्रशाद मोकौं मिल्यौ, आराधना सु च्यार ॥ १७३ ॥
पंचपरमपदकौं नमौं, वहुप्रकार हित धार ।
जिनके भक्ति प्रशादतैं, मिलै मोक्ष सुखसार ॥ १७४ ॥
करहि संत नितभावना, जिहँ समाधके काज ।
सो सव सम्यक विध मिल्यौ, उत्तमार्थ मोहि आज ॥ १७५
नमों सु क्षेत्र विदेह जहँ, मोक्षमार्ग है आज ।
समवसरन महिमासहित, विद्यमान जिनराज ॥१७६ ॥
रत्नत्रय या जीवको, निश्चय शरन सहाय ।
जातैं जन्म जरामरन, भौ भौका दुख जाय ॥ १७७ ॥
रत्नत्रयको सरन है, सरन महा तपघोर ।
सरन सु श्रीगुरु चरनकी, धारतुहौं कर जोर ॥ १७८ ॥
पंचपरम गुरुदेवको, सरन गहौं सु अवार ।
जा प्रशाद निजनिधि मिलै, होय सहज निस्तार ॥१७९॥
वहु पुदगल वहु जगत जन, जदपि होहिं दुखदान ।
तद्यपि हूं व्रत भावमैं, अचल सुमेरु समान ॥ १८० ॥
जो वहु वेदनतैं अवै, टूक टूक तन होय ।
तोहू व्रततैं नहिं चिगौं, यह दिढता मम जोय ॥ १८१ ॥
धरौं सु उज्जलरीततैं, आराधना अभंग ।
निर्वाहौं परलोकलौं, लेजाऊं निजसंग ॥ १८२ ॥
जो कहुं जिन्हा वल घटिजाय । कहै समस्या सीसहिलाय ।
जोरै हस्तांगुली उठाय । सुनै धर्म रुचिसौं मन लाय ॥१८३॥

सामग्रीवरनन ।

क्षिपकतने वैयाव्रतरीत । है सन्मार्ग सुपुण्य पुनीत ।
कीजे भवि वैयाव्रतमूल । क्षिपकपुरुषके व्रत अनुकूल॥१८४॥
क्षिपकशरीरप्रकृति पहचान । शीत उष्णका समय सु जान ।
रोगवेदना समन उपाय । सो सुपथ्य आहार दिवाय ॥१८५॥
नहिं दुरगंध नहीं दुःस्वाद । जातैं रंच न होय विषाद ।
दीजे उचित सु पथ्य अहार । और घनौं कीजे उपचार १८६
हरड़ लवंगादिक अवटाय । कुरलाहित दीजे जु वनाय ।
ऐसी औषध दीजे सही । श्रवण जीभ वल घटै जु नहीं १८७
तथा उदरमलतने विकार । अल्प अल्प रेचक उपचार ।
जो त्रिदोषवेदन नहिं वधै । भले प्रकार अराधन सधै ॥१८८॥
कहूं शूलवेदन उपजाय । तासु समन हित करिय उपाय ।
तापन मर्दन लेपन गात । विथाहरन औषध विख्यात १८९
मूत्राशयमैं रोग जु थाय । वाती देय इलाज कराय ।
सेवा टहल कीजिये भूर[1] । वैयाव्रत तपरीत प्रपूर ॥ १९० ॥
क्षिपकशरीर सिथल होजाय । तहाँ काज सव आप कराय ।
यत्न सहित वैठाय उठाय । कीजे ज्यौं करवट वदलाय ॥१९१॥
मलमूत्रादिक साफ कराय । मनमैं रंच ग्लान नहिं लाय ।
सँस्तर अवर वस्तिका ठाम । नितप्रति सव सोधै अभिराम १९२

---

१ बहुतप्रकारसे ।

अन्यमती कोऊ निकट न जाय। विकथावचन न श्रवन सुनाय।
रहिये रात्रि सु जाग्रतरूप। धरिय सचेती विविधसरूप॥१९३॥

समाधि धरनेका समय।

अधिकवृद्ध जर्जरा असक्त। रोग असाध्य होय जो व्यक्त।
अति दुरभिछ उपसर्गनिमाहिं जहाँ धर्म निज निवहै नाहिं१९४
इन आदिक वहु भेदविशेष। अथवा आयु अल्प रहै शेष।
आराधै चहुँ आराधना। धरै समाधिधर्म साधना॥ १९५॥

गीता।

अतिविकट वन मार्ग अथवा अन्य कठिनस्थान जू।
जहँ सु अपने प्राणका धोखा लखें बुधवान जू॥
तहँ सु समय मरजाद करकें अशन त्याग उर ठानिये।
ज्यों तहांतें बच्चिय तो पुन ग्रहण विधि परमानिये॥ १९६॥

समाधिमरणका माहात्म्य

चौपाई।

दुर्गति त्याग सुगतिमैं वास। है यह ततखिन फल संन्यास।
परंपरा पावै शिवठाम। सुख अनन्त अविचल विश्राम॥१९७॥
मरण भेद सत्रह परकार। वृहतशास्त्रमैं कथन विचार।
नहीं प्रमत्तयोगको लेश। है समाधि निर्दोष विशेष॥ १९८॥
जहाँ सुगुरु समाधि व्यवहार। सो है क्षेत्र सु तीरथ सार।
मुनिवर कीजे त्यक्त शरीर। सो है पूजनीक गंभीर॥ १९९॥
जहां सु है आराधन च्यार। तहंकी महिमा अगम अपार।
सवहीको सु प्रयोजनवंत। है सु समाधिमरण भव अंत॥ २००

दोहा ।

श्री सरवज्ञ कथित धरे, जो संन्यास विधान ।
सात आठ भव भीतरे, सो पावे निर्वान ॥ २०१ ॥

चौपाई ।

श्रावक कुल शुभ नर परजाय । मिल्यो सर्वविधि धर्म उपाय ।
जो सम्यग विधि धरे समाधि । मिटे भ्रमन चहुंगति भवव्याधि॥
हस्ती आदिक पशू अनेक । कियो समाधिमरण सविवेक ।
ता फल पायो स्वर्गविमान । नरकी महिमा कौन वखान ॥२०३
श्रीजिन कथित समाधिविधान । शिवपुर सन्मुख मग प्रस्थान ।
रुचितैं पढे सुने जो कोय । ताकों कहुं अपमृत्यु न होय॥२०४॥
स्वहितुपकारी कथन सु देख । वार वार इसरे विशेख ।
देव शास्त्र गुरु धर्म प्रसाद । प्रगटे सुख दुख मिटे अनाद ॥

सोरठा ।

जिनशासन श्रद्धान, ज्ञान सु व्रत तप आदरे ।
ते नर परम प्रधान, शीघ्र लहें शिव सुख अचल ॥ २०६ ॥

इति श्रीधर्मरत्नोद्योतग्रन्थे समाधिभावना नामा अष्टमोऽधिकारः ।

अथ आराधना अधिकारः प्रारभ्यते।

दोहा ।

जिनके वचनविनोदतैं, प्रगटै शिवपुर राह ।
ते जिनेंद्र पद सुहित नित, प्रणमौं चित उत्साह ॥ १ ॥
शिवपुर राह प्रकाशकरि, कर्मधराधर नाश ।
विश्वतत्त्व जान्यौ सु जिन, प्रणमौं तुवगुणआश ॥ २ ॥

चौपाई १६ मात्रा ।

जयति सुगुरु विस्तारै शिवमग । विविध विदारे कर्म कठिन नग।
आप प्रतक्ष्य निहारे सव'जग' । वंदौं थारे सुगुणहेत पग ॥३॥

दोहा ।

सम्यकदर्शन ज्ञान वर, । चरण सु तप आचार ।
आराधे वहु भव्यजन, लहै मोक्ष सुख सार ॥ ४ ॥

गोंमटसारोक्त सम्यग्दर्शनका लक्षण ।

गीता ।

द्रव्य षट पंचास्तिकाय सु ठीक नवहि पदार्थ है ।
तत्त्वार्थ इति उपदेश जिनवर सो सरव सत्यार्थ है ॥
आज्ञा तथा अधिगम सु याकी रुचि प्रतीत यथार्थ है ।
है यही समकित यही लक्षण कथन परमार्थ है ॥५॥

---

१ गाथा—छप्पंचणवविहाणं अट्ठाणं जिणवरोवइट्ठाणं ।
आणाइ अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥ गोंमटसारे।

दोहा ।

जीवादिक तत्त्वार्थका, रुचि प्रतीत श्रद्धान ।
सम्यग्दर्शन है यही, लक्षण कह्यो पुरान ॥ ६ ॥
जीव अजीवास्रव सु विधि, बंधभेद विस्तार ।
लखो सु संवर निर्जरा । मोक्षतत्त्व सुखकार ॥ ७ ॥
सप्ततत्त्वके कथनमें, पापपुण्य विस्तार ।
नवपदार्थ श्रद्धानधरि, जिनवानी अनुसार ॥ ८ ॥

सोरठा ।

कै निजसहजस्वभाव, कै गुरु वचनुपदेशतैं ।
सम्यग्दर्शन भाव, प्रगट होय भविजीवकैं ॥ ९ ॥

दोहा ।

दर्शमोह उपशम तथा, क्षय उपशम क्षय तीन ।
अंतरंग कारन लखो, समकिततने प्रवीन ॥ १० ॥
औपशमिक क्षायोपशम, क्षायिक भेद सु धार ।
इह सम्यकदर्शन तने, भेद सु तीन प्रकार ॥ ११ ॥
आप्तागम उपकारको, स्तवौं अती हित ठान ।
जाप्रसाद सु पदार्थका, ह्वै यथार्थ श्रद्धान ॥ १२ ॥
संशय विपरीती विनय, कुनय इकांत अज्ञान ।
इति पांचौं मिथ्यात तजि, सजि सम्यक श्रद्धान ॥ १३ ॥
देव जिनेश निग्रंथ गुरु, परम अहिंसा धर्म ।
रुचिप्रतीत श्रद्धा सजो तजो अन्यथा भर्म ॥ १४ ॥

रागादिक दूषण रहित, परम आप्त अरहंत ।
स्यादवाद आगम अगम, नवपदार्थ विरतंत ॥ १५ ॥
जे सु विचक्षन चतुर नर, निजहित वांछक संत ।
ते सु शास्त्र अभ्यासमैं, आदर करहिं अत्यंत ॥ १६ ॥
नय प्रमान अनुयोगका, कीजे विविध अभ्यास ।
जा प्रशाद तत्त्वार्थका, अधिगम ह्वै सुखरास ॥ १७ ॥
नयप्रमाण अनुयोगमैं, जहां न वुधि विस्तार ।
तहँ केवल सर्वज्ञकी, आज्ञा समकित धार ॥ १८ ॥
यही क्रिया व्रत विधि यही, तत्त्वारथ है एव ।
यही सही सत्यार्थ है, जो भाख्यौ जिनदेव ॥ १९ ॥

चौपाई ।

जिनवरविंव सु दर्शन देख । तथा सुधर्म श्रवन जु विशेख ।
अथवा जातिसरन उपाय । नरपशुके समकित उपजाय ॥२०॥
धर्मश्रवन तीजे लौं कहा । जातसरण सर्वथल लहा ।
अथवा बहुवेदना लहाय । नारकिके समकित उपजाय ॥२१॥
जिनकल्याणक दर्शन पाय । वा सुर महत ऋद्धि दरशाय ।
जातसरन सुधर्म सुनाय । सुरगतिमैं समकित उपजाय ॥२२॥
इत्यादि बाहिज कारन सही । श्री सरवारथ सिधिमैं कही ।
यामैं अवर विशेष अनेक । वृहत् ग्रंथतैं लखो प्रत्येक ॥ २३ ॥

दोहा ।

हैं सु सराग विराग दो, भेद सम्यक्त उदार ।
विराग स्वानुभव गम्य है, सराग चिन्ह है च्यार ॥ २४ ॥

प्रशम और संवेग उर, अनुकंपा आस्तिक्य ।
हैं सु सरागसम्यक्त्वके, च्यार चिन्ह स्वास्तिक्य ॥ २५ ॥

सुंदरी छंद ।

जहँ मिथ्यात रु कठिन कषाय जू । नाहिं है तहँ प्रशम कहाय जू ।
भ्रमन भय अरु धर्मकि रुचि करै । इति संवेग सु भव्य हृदै धरै ॥
आप परदुःखदेखतही दया । इह सु उत्तम अनुकंपा लया ।
लहिय त्याग सरव नास्तिक्य जू।गहिय परम पदार्थ आस्तिक्य जू॥

दोहा ।

तनतैं मनतैं वचनतैं, धरै धर्मका पक्ष ।
चलमलरहित अदोष उर, गहि दिढसमकित स्वच्छ ॥२८॥
मिथ्यामतकरि कथित दुः, युक्त वृथा दृष्टांत ।
तातैं नहिं उदवेग उर, नहिं उपजै कछु भ्रांत ॥ २९ ॥
कैसी ही विधि जो मिलै, सुखदुखकारन कोय ।
रुचि प्रतीत श्रद्धानतैं, चलायमान न होय ॥ ३० ॥
रुचि प्रतीत बिगड़ै नहीं, नहीं अन्यथा वाक्य ।
कोउ कारणकरि नहिं तजै, सत्यारथकी शाक्य ॥ ३१ ॥

सम्यक्त्वके त्रेसठ गुण ।

तीनमूढता आठमद, छह अनायतन टार ।
शंकादिक वसुदोष तजि, इति पचीस गुणधार ॥ ३२ ॥
त्याग मूढताभाव उर, करि निर्णय सज्ञान ।
परमदेवगुरुधर्मकौं, गहो सु अति हितठान ॥ ३३ ॥

तप बल विद्या जाति कुल, रूपैश्वर्य सु ज्ञान ।
इनका गर्व नहीं करै, धरै सु गुण परधान ॥ ३४ ॥
कुगुरु कुदेव कुधर्म अरु, याके धारक लोग ।
नहीं धर्मके थान ये, छहों त्यागिवे योग ॥ ३५ ॥

अडिल्ल ।

शंका कांक्षा ग्लान मूढता नहिं धरै ।
और अनुपगूहन अस्थिरता परिहरै ॥
वहुरि अवात्सल्य तजिये अप्रभावना ।
इह वसुदोप निवारि आठ गुण पावना ॥ ३६ ॥

दोहा ।

इह सु नाम सामान्यपने, कहे पचीस प्रकार ।
है सु प्रसिध वहु कथन इति, सवविधि दोष निवार॥३७॥
इन दूषन के निमिततैं, समकित होय मलीन ।
तथा नष्ट होजाय इति, धरिय सम्हाल प्रवीन ॥ ३८ ॥

पद्धड़ी छंद ।

संवेग और निर्वेद सार । निंदा गर्हा सम भक्ति धार ।
अनुकंपा अरु वात्सल्यआठ । सम्यक्त सु गुणका लखो पाठ॥३९

चौपाई १६ मात्रा ।

शंका कांक्षा विचिकित्सा इति । और अन्यदृष्टी मिथ्यामति ।
तासु प्रशंसा स्तवन निवारा । इह समकित पंचातीचारा ॥ ४०

दोहा ।

मिथ्यादर्शन कुटिलता, अवर जु विषय निदान ।
तीनौं सल्य तजै सजै, गुण सम्यक्त प्रधान ॥ ४१ ॥
इह परभवको आदि ले, भय जु सात परकार ।
दूर करै भय भाव निज, निर्भय गुण अवधार ॥ ४२ ॥
इति अड़तालिस मूलगुण, समकित तने सु जान ।
पंद्रह उत्तरगुण सहित, सब त्रेसठ उर आन ॥ ४३ ॥
मांस सहत इत्यादि वस्तु, अवर विसन जे सात ।
ए पंद्रह त्यागै सोई, परमसुगुण विख्यात ॥ ४४ ॥

सम्यक्‌दर्शनके दशभेद ।

रयड़छंद ।

आज्ञा मार्ग उपदेश अवधार । सूत्र बीज संक्षेप विस्तार ।
अर्थ पुनः सम्यक अवगाढ । दशम सु नाम परमअवगाढ ॥
आज्ञा आदिक परम प्रधान । कारनतैं प्रगटै श्रद्धान ।
तास अपेक्षा लेय अखेद । है शुभकथन नाम वसुभेद ॥४६॥
श्रुत केवलिगुरुके अवगाढ । केवलि प्रभुके परमअवगाढ ।
आतमानुशासनके माहिं । इति दशभेद जु कथन कराहिं ॥

दोहा ।

जहँ अनादि मिथ्यात सजि । सुलटै जीव कदाच ।
प्रथमोपशम सम्यक्त सो, लहै नियम यह सांच ॥ ४८ ॥

चौपाई ।

जे हैं मिथ्यादृष्टि अनाद । ताके पांचहि प्रकृति विखाद ।
दर्शन मोह प्रकृति है एक । च्यार अनंतानूकी टेक ॥ ४९ ॥
सादि मिथ्यादृष्टीके पांच । काहूकै जु सात कहे साँच ।
दर्शनमोह प्रकृति हैं तीन । च्यार अनंतानू जु मलीन ॥ ५० ॥

दोहा ।

चहुं गति अगामि आयु कोउ, वंध कियो जो होय ।
ताहि सम्यक्त उपजिसकै, यामैं दोष न कोय ॥ ५१ ॥
जो गति आयु वंधै पुनः पलटै नहीं कदाच ।
पै परभवकी आयुथित, बढै घटै यह सांच ॥ ५२ ॥
प्रथम हि सप्तमभूमि थिति, गही सु श्रेणिक राय ।
सो सब सागर स्थितिघटि, अल्पमात्र जु रहाय ॥ ५३ ॥
जहँ मिथ्यातदशाविषै, वँधै कुगतिकी आयु ।
फेर सम्यक्त माहात्म्यतैं, तहँ कछु दुख घटिजाय ॥ ५४ ॥
नहिं द्वितियादिक नरक नहिं, विकल चतुकमैं जाय ।
नहीं नपुंसकवेद लहै, नहिं स्त्री परजाय ॥ ५५ ॥
नहीं नीचकुलमें नहीं, विकृत अंग अल्पायु ।
नहिं दरिद्र इत्यादि 'जग', निंद्य जन्म नहिं पाय ॥ ५६ ॥
इति अविरत सम्यकदृशी, जहँ विशुद्ध गुणसार ।
तहँ नहिं निंद्य सु जनम 'जग' लहै श्रेष्ठ अवतार ॥ ५७ ॥
सम्यक्ती नरपशुनकी, वंधै जु आयु विमान ।
अजहूं कल्पविमानमैं, उपजै समकितवान ॥ ५८ ॥

देव तथा जे नारकी, सम्यग्दृष्टि सुभाय ।
लहैं उत्तम नरजन्म वा, सुखमय पशुपरजाय ॥ ५९ ॥

सुंदरी छंद ।

जाहि समकित उपजिकैं छूटही। तासु भ्रमन जु हद उतकृष्टही।
अरध पुद्गल प्रावर्त्तन कहे । याके भीतरही शिवथल लहे ६०

दोहा ।

सादि अनंत विमल अचल, है छायक सम्यक्त ।
सात प्रकृति छय होत ही, सहज होय यह व्यक्त ॥६१॥
क्षायक समकितके भये, तद्भव ले शिवठाँहिं ।
वा तीजे चौथे सु भव, नियमथकी शिवजाँहिं ॥ ६२ ॥

चौपाई ।

केवलिश्रुत केवलिप्रभु पास । क्षायक समकित होय प्रकाश ।
इह अद्भुत विशुद्ध परिणाम । प्रगटै नहीं अन्य कहूं ठाम ६३

दोहा ।

सम्यकदर्शन होत ही, हो है सम्यक ज्ञान ।
एक संग ज्यौं दुहुनकी, उत्पति कही पुरान ॥ ६४ ॥
लहै सम्यक्त प्रशादतैं, ज्ञान महात्मस्वरूप ।
मिथ्यापद हद पलटिकै, होय सु सम्यकरूप ॥ ६५ ॥
जानै निजपर तत्त्वको, भेद जु बहुत प्रकार ।
संशय भरम विमोह विन, सम्यक ज्ञान विचार ॥ ६६ ॥
क्षायिक क्षायुपशमिक इति, भेद सु दोय प्रकार ।
सम्यकज्ञान सु जानिये, निज आतमगुण सार ॥ ६७ ॥

क्षायक केवलज्ञान है, अवर ज्ञान जे च्यार ।
क्षायुपशमिक सु जानिये, जिनवानी हित धार ॥ ६८ ॥
सुवाध्याय परमो तपः, इति सु वाक्य सिद्धांत ।
जाप्रशादतैं भव्यका, कर्मऽनादि ह्वै सांत ॥ ६९ ॥
तत्त्वज्ञान अभ्यासमैं, होय सातिशय पुन्य ।
प्रकृति घातिया थिति घटै, ह्वै अनुभाग सु सून्य ॥ ७० ॥
बहु मिथ्यात उन्मार्गको, कर ततछिन शत खंड ।
धरै तत्त्व निर्णय विशद, बोध परम मार्तंड ॥ ७१ ॥
सम्यक दर्शन होत ही, हो है सम्यक ज्ञान ।
बहुरि होय बड भागतैं, सम्यक चरन विधान ॥ ७२ ॥
अज्ञानी जनकी क्रिया, सबही बंध सरूप ।
धरो सु सम्यक ज्ञानजुत, सम्यक चरन अनूप ॥ ७३ ॥
गहो देश चारित्र पुन, लहो सकल चारित्र ।
भेद सु दोय प्रकार यों, है चारित्र पवित्र ॥ ७४ ॥
है सु देशचारित्रविधि, क्षायोपशमिक सरूप ।
बहुरि सकल चारित्रनिधि, तीन प्रकार अनूप ॥ ७५ ॥
उपशम क्षयउपशम तथा, क्षायक भेद सु धार ।
है सु सकल चारित्रनिधि, यहविधि तीन प्रकार ॥ ७६ ॥
सम्यक दर्शन ज्ञान व्रत, पूज्य जगतमैं होयँ ।
जो इनके धारक पुरुष, पूजनीक हैं सोय ॥ ७७ ॥
सम्यक रत्नत्रय यही, मोक्षमार्ग निरधार ।
स्वर्गादिक अभ्युदयको, यहै सु मारगसार ॥ ७८ ॥

देव आयु विन अन्य कोउ आयु जु वाँधे होय ।
अणुव्रत तथा महा सु व्रत, धारिसकै नहिं सोय ॥ ७९ ॥
केइ महव्रत अणुव्रत सु नर, केइ पशु अणुव्रतधार ।
नरक अवर गति देवमैं, नहिं व्रत नियमाचार ॥ ८० ॥
सम्यकदृष्टी होंय कई, भोगभूमिके माहिं ।
पै तप नियमाचार व्रत, भोगभूमिमैं नाहिं ॥ ८१ ॥
कर्मभूमिहीमैं सु इह, व्रततपनियमाचार ।
तथा सु कुल जातादि वहु, भेदविविध व्यवहार ॥ ८२ ॥
अणुव्रतमयि सागारव्रत, धरइं चतुर कुल लोय ।
उत्तम तीनौं सुकुलके, महाव्रती मुनि होय ॥ ८३ ॥
मुनिपदवी उत्कृष्टपनै, गहै सु वत्तिस वार ।
तहाँ नियम करके सु जिय, केवल ले भवपार ॥ ८४ ॥
कछुक अधिक वसुवर्षका, होय महाव्रतधार ।
केवलज्ञान प्रकाशकर, शीघ्र लहै भवपार ॥ ८५ ॥
पंचभेद चारित्रविधि, आगममाहिं प्रसिद्ध ।
प्रणमूं नितप्रति विनयसौं, मोकौं होहु सुसिद्ध ॥ ८६ ॥
मानै सत्य स्वरूप निज, जानै भेद सु सार ।
ठानइ स्थिर सुभावनिधी, रत्नत्रय हितधार ॥ ८७ ॥
सम्यकरत्नत्रयमयी, मोक्षमार्ग है एक ।
याहीके निर्धार हित, हैं दृष्टांत अनेक ॥ ८८ ॥
चहै निरोगशरीर निज, लहै सु भेदविचार ।
गहै सु औषध उचितविध, मेटै रोगविकार ॥ ८९ ॥

यथा अंधके कंधपैं, चढै पंगु परवीन ।
परमादीका कर पकर, पार होंय मिल तीन ॥ ९० ॥
रत्नत्रय भेले भये, मोक्षमार्ग निरधार ।
याके सहकारी घने, कारन और विचार ॥ ९१ ॥
उचित क्षेत्र कालादि अरु, सँहनन देह पवित्र ।
इत्यादिक कारन घने, मोक्ष तने लखि मित्र ॥ ९२ ॥
अष्टअंग सम्यक्त गहि, लहि वसु अंग सु जान ।
तेरहविधि चारित्र धर, कीजे निज कल्यान ॥ ९३ ॥
यद्यपि सम्यक चरनमैं, है गर्भित तप रीत ।
तद्यपि कह्यो विशेषविधि, सम्यक तप सु पुनीत ॥ ९४ ॥

चौपाई ।

अनसनतप उपवास सु धार । अवमोदर्य अल्प आहार ।
धरै प्रतिज्ञा व्रतसंख्यान । रसपरित्याग करै बुधवान ॥ ९५ ॥
है विविक्त सय्यासन नाम । धरइ भिन्न सयनासनठाम ।
करै सु कायकलेस अपार । है यह छह बाहिज तपसार ॥ ९६ ॥
प्रायश्चित्त सु विनय धराय । वैयाव्रत्त और स्वाध्याय ।
है व्युतसर्ग ध्यान निर्धार । आभ्यंतर तप छह परकार ॥९७॥

दोहा ।

श्रीजिनवर पद ध्येय को, धरि सु चिंतवन ध्यान ।
ध्याता श्रीमुनि ध्यान फल, लहै सु केवल ज्ञान ॥ ९८ ॥
आपुहि ध्याता ध्येय है, निजपरवस्तु प्रशस्त ।
ध्येय चिंतवन ध्यान फल, शुद्ध होय निज वस्त ॥ ९९ ॥

चौपाई ।

आरत रौद्र ध्यान परिहरै । धर्म शुकलकी श्रद्धा धरै ।
शुकलध्यान कहि अगम अपार । धर्मध्यान लहि दश परकार ॥
देखि ग्रंथ चारित्रासार । अतिसंक्षेप अर्थ अवधार ।
अर्थ पुरातन रचना नई । धर्म ध्यानकी दश चौपई ॥१०१॥
इह अनादि भव भ्रमन मझार । कर्मबंध भयो बहुत प्रकार ।
सो अब कैसें कटै अबार । ध्यान अपाय विचय सु विचार ॥
मनवचकाय योगको वृत्त । होय सु सब विध भलीप्रवृत्त ।
यह कैसें अवश्य मो होय । ध्यान उपाय विचय है सोय॥१०३॥
है उपयोग सु लच्छनसार । सकुचै फैलै विविध प्रकार ।
कीजे जीवस्वभाव विचार । जीवविचय सु ध्यान सुखकार ॥
धर्म अधर्म नभ पुद्गल काल । पंच अजीव सु कथन विशाल ।
गुण पर्जय सु भेद विस्तार । ध्यान अजीवविचय सु विचार ॥
प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश । गति सु योनि आदिक जु विशेस
कर्मप्रकृति विपाक सु विचार । ध्यान विपाकविचय अवधार ॥
देहादिक है अशुचि मलीन । तातैं होय विरक्त प्रवीन ।
बहु विराग कारन सु विचार । ध्यान विरागविचय हितधार ॥
यह अनादि भवभ्रमनमझार । सम्यकतादिक गुणहि लगार ।
सहै निरर्थक कष्ट अपार । सो भवविचय चिंतवन सार ॥ १०८ ॥
यथा अवस्थित वस्त विचार । अनुप्रेक्षा द्वादशपरकार ॥
कर सु चिंतवन बारंबार । है संस्थानविचय हितकार ॥१०९॥

स्यादवाद आगम निर्दोष । अन्य सर्व ही है जु सदोष ।
त्याग दोष गुणधरै विचार । हेतू विचयध्यान निर्धार ॥ ११० ॥

इति श्रीधर्मरत्नोद्योतग्रंथे आराधनानामा नवमोऽधिकारः ।

अंतमंगलादि ।

दोहा ।

आदि मध्य अरु अंतमैं, मंगल सर्वप्रकार ।
श्रीजिनेंद्र पदकंज जुग, नमौं सु कर सिरधार ॥ १ ॥
तर्क वात लागै नहीं, नहिं अज्ञानतम रंच ।
धर्मरत्नउद्योतमैं, कर उद्यम सुखसंच ॥ २ ॥
है जो इक इक छंदप्रति, भिन्नभिन्न शुभअर्थ ।
नहिं परके आधीन कोउ, नहिं कहुं रंच अनर्थ ॥ ३ ॥
उपमा वहु अहमिंद्रकी, है सवही स्वाधीन ।
कहे पुरातन अर्थके, दोहे छंद नवीन ॥ ४ ॥

इति धर्मरत्नोद्योत समाप्त ।

वीरनिर्वाणसं-२४३८ माघ कृष्ण १३

पुरानीप्रतिका अंतिमलेख ।

मिती कार्तिक कृष्ण १० संवत् १९४५ पोथीदान किया बाबू परमेष्टीसहाय भार्या जानकी वीवी आरेके पंचायती मंदिरजीमैं पोथी धर्मरत्न ग्रंथ ।

इस पोथीकी अध्यायपूर्तिमें सव जगह धर्मरत्नग्रंथ ही नाम लिखा-गया है ।